विशेषांक

UPBIL 04831

मूल्य ₹100

संस्कृति, साहित्य, अध्यात्म और जीवन दर्शन की मासिक द्विभाषी पत्रिका

# संस्कृति पर्व

## sanskritiparva

## धर्म संस्थापनार्थाय

## सांस्कृतिक महासंघ

गीता महोत्सव-2021

विदेश के लिए मूल्य : $10

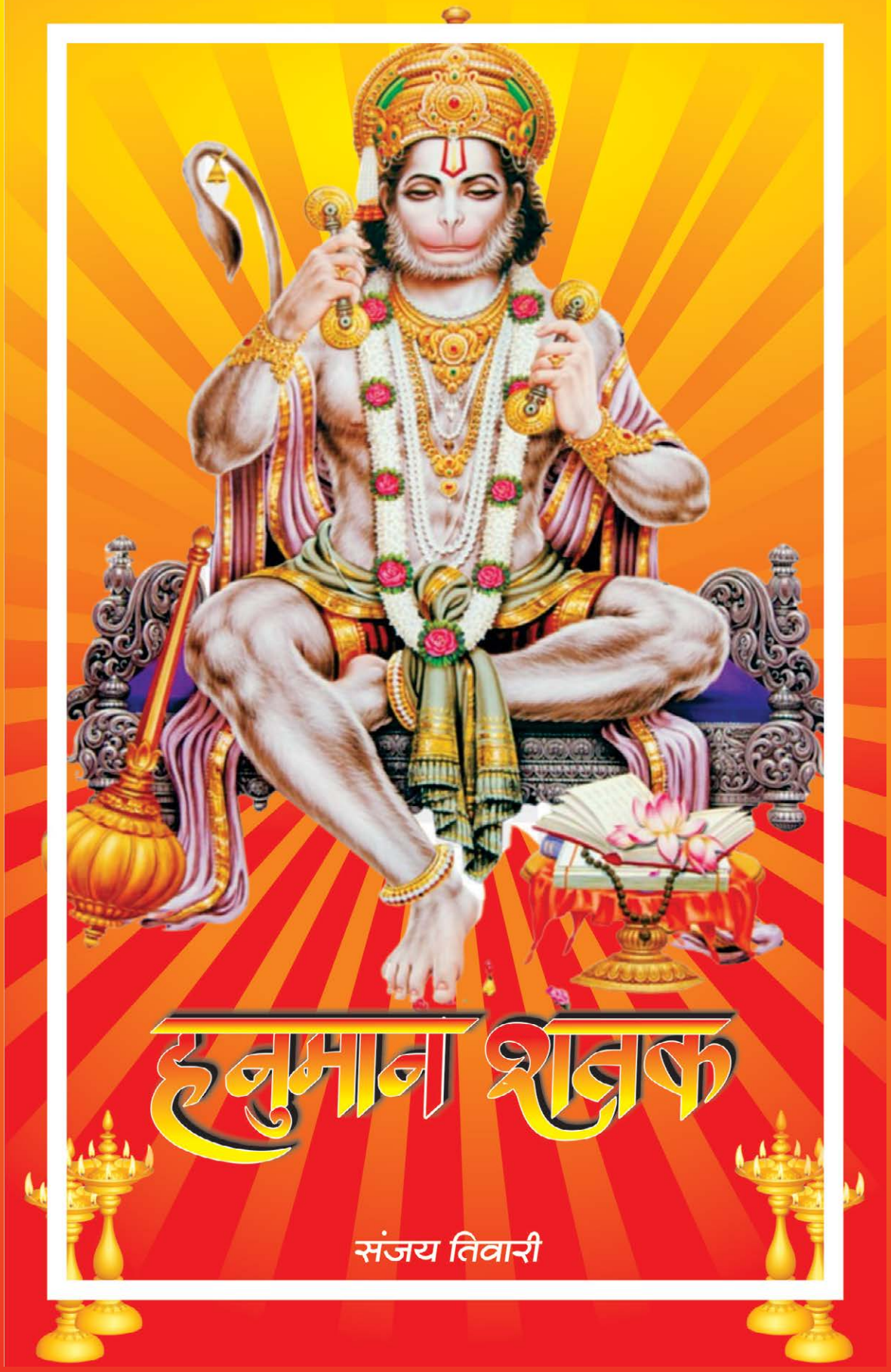
हनुमान शतक
संजय तिवारी

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥
महासागर
गीता जयंती
मार्गशीर्ष शुक्लपक्ष एकादशी
14 दिसम्बर 2021

# अनुक्रमणिका


| क्रम संख्या | शीर्षक | लेखक | पृष्ठ सं0 |
|---|---|---|---|
| 01 | ढ़ाई हजार वर्षों में भारत भूखण्ड का 1947 में 24वां विभाजन हुआ | डॉ. इन्द्रेश कुमार | 16 |
| 02 | विश्व कल्याण हेतु भारत का सनातन संदेश है गीता | प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय | 22 |
| 03 | नैसर्गिक सांस्कृतिक संघ है भारतीय उपमहाद्वीप | संजय तिवारी | 24 |
| 04 | सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति | स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती | 48 |
| 05 | सन्यासी और कर्मयोगी के पांच संयम सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह | संजय राय, 'शेरपुरिया' | 56 |
| 06 | सत्व, रज और तम से गुणातीत होकर ही अनासक्ति और दुःखों से मुक्ति संभव | डॉ. हितेश व्यास | 59 |
| 07 | कलश धर्म और नूरिस्तानी समुदाय | डॉ.अर्चना तिवारी | 63 |
| 08 | सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण | | 64 |
| 09 | काव्यांगन | डॉ. हिमांगी त्रिपाठी<br>श्वेता मिश्रा<br>आस्था जैन<br>गणेश शर्मा 'विद्यार्थी' | 84 |


## पाठकों से

संस्कृति पर्व का यह विशेष अंक आपके हाथों में है। इस अंक के लिये चित्रों का संकलन गूगल से किया गया है जिसके लिए हम उन सभी छायाकारों के प्रति कृतज्ञ हैं। इस अंक मे संभव है कि संपादन अथवा संयोजन में कुछ त्रुटियां रह गयी हों इसलिए हम अपने सुधी पाठकों से अपेक्षा करते हैं कि वे त्रुटियों को नजरअंदाज करेंगें। यह अंक आपको कैसा लगा इस बारे में हमें अपने विचारों से अवश्य अवगत कराईएगा। सनातन संस्कृति के संरक्षण और संवर्धन में आपका योगदान अत्यंत मूल्यवान है।

– सम्पादक

*प्रेरणा*
*परम पूज्य स्वामी अखण्डानंद जी महाराज*
*संत साहित्य मर्मज्ञ आचार्य परशुराम चतुर्वेदी*
*ब्रह्मर्षि रेवती रमण पाण्डेय*

संस्कृति पर्व
sanskritiparva

**गीता महोत्सव – अंक**
**वर्ष-4 अंक-9 दिसम्बर - 2021**

**सनातन प्रकाश पुंज**

**जगद्गुरू स्वामी वासुदेवाचार्य जी स्वामी विद्याभास्कर जी महाराज**

**स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती जी**

(महामंत्री, अखिल भारतीय संत समिति एवं गंगा महासभा)

**जगद्गुरु स्वामी राघवाचार्य जी** (श्री अयोध्या जी)

**स्वामी राजकुमार दासजी** (श्री अयोध्या जी)

**संरक्षक**

**संजय राय शेरपुरिया**

**विद्वत परिषद**

**प्रो0 सभाजीत मिश्र** – (पूर्व अध्यक्ष, दर्शनशास्त्र विभाग, (गो0वि0वि0)
**प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी** – (पूर्व अध्यक्ष, आईसीएचआर, नई दिल्ली)
**प्रो0 संजय द्विवेदी** – (निदेशक, भारतीय जनसंचार संस्थान, नई दिल्ली)
**डॉ0 लालता प्रसाद मिश्र** – (वरिष्ठ अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
**ए. पी. मिश्र** –(अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, लखनऊ)
**अमरनाथ सिंह** –(समाजसेवी एवं आध्यात्मिक चिंतक)
**प्रो0 विनय कुमार पाण्डेय** –(अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग का0 हि0 वि0 वि0)
**प्रो0 रामदेव शुक्ल** – (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, गो0वि0वि0)
**प्रो0 माता प्रसाद त्रिपाठी** – (पूर्व अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास विभाग, गो0वि0वि0)
**प्रो0 नन्द किशोर पाण्डेय** – (पूर्व अध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा)
**प्रो0 सदानंद गुप्त** – (कार्यकारी अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान)
**श्री मनोजकांत** – (सम्पादक राष्ट्रधर्म)
**प्रो0 अजित के चतुर्वेदी** – (निदेशक, आईआईटी रुड़की)
**प्रो0 सुरेन्द्र दुबे** – (पूर्व कुलपति, सिद्धार्थ वि0वि0)
**प्रो0 राजेन्द्र प्रसाद** –(कुलपति, मगध विश्वविद्यालय)
**श्री प्रफुल्ल केतकर** – (सम्पादक, ऑर्गनाइजर)
**डॉ मृणालिनी चतुर्वेदी** – (अध्यक्ष क्रायोबैंक इंटरनेशनल, नई दिल्ली)
**श्री कृष्णकांत उपाध्याय** – (सम्पादक,जनता टीवी, उ. प्र.)
**डॉ0 देवर्षि शर्मा** – (लेखक एवं समाजसेवी, कानपुर)
**डॉ0 प्रदीप राव** – (शिक्षाविद्, गोरखपुर)
**प्रो0 हिमांशु चतुर्वेदी** – (इतिहास विभाग, गो0वि0वि0)
**प्रो0 राजेन्द्र सिंह** – (पूर्व प्रतिकुलपति, (गो0वि0वि0)
**श्री आर एल पाण्डेय** – (शिक्षाविद् टेक्सास, अमेरिका)
**डॉ0 नरेश अग्रवाल** – (वरिष्ठ बाल रोग विशेषज्ञ, गोरखपुर)
**डॉ0 आर0 सी0 श्रीवास्तव** – (अवकाशप्राप्त आई0ए0एस0)
**राकेश त्रिपाठी** – (आई0 आर0 एस0)
**भास्कर दूबे** – (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
**डॉ0 योगेश मिश्र** – (समूह सम्पादक, अपना भारत/न्यूज ट्रैक, लखनऊ)
**डॉ.दिनेश मणि त्रिपाठी** – (सदस्य उ.प्र. माध्यमिक शिक्षा परिषद)

**सलाहकार परिषद**

**अध्यक्ष**

**श्रीमती रेशमा एच सिंह,** (नई दिल्ली)

**विशिष्ट सदस्य**

**श्री कुणाल तिलक,** (पुणे)
**श्री अनीश गोखले,** (बेंगलुरु)
**श्री अंबरीष फडणवीस,** (मुम्बई)

**सदस्य**

**श्री अजय उपाध्याय** (वरिष्ठ पत्रकार, नई दिल्ली)
**श्री सुजीत कुमार पाण्डेय**
(वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
**डॉ0 मुन्ना तिवारी** (बुन्देलखण्ड वि0वि0 झांसी)
**दयानंद पाण्डेय** (लेखक एवं पत्रकार)
**डॉ पुनीत विसारिया**
अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बुंदेलखण्ड वि. वि., झांसी
**डॉ0 ममता त्रिपाठी** (दिल्ली वि0वि0)
**श्री सुनील जैन**(एडवोकेट, इलाहाबाद)
**डॉ. मिथिलेश तिवारी** (संगीतज्ञ, गोरखपुर)
**आचार्य सोमदत्त द्विवेदी** (वाराणसी)
**श्री हेमंत मिश्र** (निदेशक, एबीसी शिक्षा समूह)
**श्री अजय शाही** (निदेशक, आरपीएम शिक्षा समूह)
**डॉ0 गजेन्द्रनाथ मिश्र**
(निदेशक, आर0सी0 मेमोरियल शिक्षा समूह)
**श्री अरुणकांत त्रिपाठी**
(सम्पादक, कमलज्योति, लखनऊ)
**डॉ0 मनोज कुमार श्रीवास्तव**
(चिकित्सक एवं लेखक, वाराणसी)
**डॉ0 वाई के मद्धेशिया**
(वरिष्ठ चिकित्सक, कुशीनगर)
**श्री मंकेश्वरनाथ पाण्डेय**
(सचिव, नेशनल एजुकेशनल सोसाईटी, गोरखपुर)
**श्री दीप्तभानु डे** (वरिष्ठ पत्रकार, गोरखपुर)
**श्री रतिभान त्रिपाठी** (वरिष्ठ पत्रकार, लखनऊ)
**श्री मारकण्डेयमणि त्रिपाठी**
(अध्यक्ष, प्रेस क्लब, गोरखपुर)
**श्री पुरुषोत्तम तिवारी**
(वरिष्ठ पत्रकार, कोलकाता)
**श्री अनुपम सहाय**
(वरिष्ठ अधिकारी, पीएनबी)
**डॉ0 रविकांत तिवारी**(अमेरिका)
**डॉ0 राम शर्मा**(शिक्षाविद्, मेरठ)
**दिवाकर शर्मा**(वरिष्ठ पत्रकार, शिवपुरी)
**आमोदकांत मिश्र** (वरिष्ठ पत्रकार, कुशीनगर)

**प्रधान सम्पादक**
**श्री हनुमानजी महाराज**

**सम्पादकीय संरक्षक**
**आचार्य विश्वनाथ प्रसाद तिवारी**
(पूर्व अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

**समूह सम्पादक**
प्रो0 राकेश कुमार उपाध्याय

**अतिथि सम्पादक**
स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती

**प्रबंध सम्पादक**
बी के मिश्र

**सम्पादक**
संजय तिवारी

**कार्यकारी सम्पादक**
डॉ0 अर्चना तिवारी

**संपादक विचार**
दुर्गेश उपाध्याय

**सहायक सम्पादक**
डॉ0 अनिता अग्रवाल (हिन्दी)
डॉ0 राजीव तिवारी (अंग्रेजी)

**समन्वय सम्पादक**
विक्रमादित्य सिंह

**सम्पादकीय सलाहकार**
डॉ. हितेश व्यास
माधवी व्यास

**सह सम्पादक**
गोविन्द शर्मा
कमलेश कमल

**विशेष सम्पादकीय परामर्श**
**आचार्य लालमणि तिवारी**
(गीता प्रेस, गोरखपुर)
**श्री रसेन्दु फोगला**
(गीता वाटिका, गोरखपुर)
**श्री अजीत दुबे**
(सदस्य साहित्य अकादमी, नई दिल्ली)

**केन्द्र प्रभारी, अमेरिका**
**आचार्य रत्नदीप उपाध्याय**

**विधि सलाहकार**
**श्री अमिताभ चतुर्वेदी**
(वरिष्ठ अधिवक्ता, नई दिल्ली)
**कैप्टन सुभाष ओझा**
(वरिष्ठ अधिवक्ता, लखनऊ)

**लेखा परीक्षक**
**अरुण गुप्ता**

**लेआउट, ग्राफिक्स एवं डिजाइन**
संजय मानव

**सूचना तकनीक एवं प्रबंधन**
**उत्कर्ष तिवारी**

**क्रिएटिव**
**प्रकर्ष तिवारी**
(shot by Inflict)

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक संजय तिवारी द्वारा स्वास्तिक ग्रफिक्स, महागनगर, लखनऊ उ0प्र0 से मुद्रित एंव बी–64, आवास विकास कॉलोनी, सूरजकुण्ड, गोरखपुर, उ0प्र0 से प्रकाशित

पत्रिका में प्रकाशित सामग्री के लिए संबंधित लेखक उत्तरदायी होगा। किसी भी प्रकार के न्यायिक विवाद का क्षेत्र गोरखपुर जिला न्यायालय के अधीन होगा।

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क - : + 9194508 87186-87
USA Office : 17413 Blackhawk St| Granada Hills, CA 91344 USA
Cell: 1-818-815-9826

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)
Mail us: editor.sanskritiparva@gmail.com
Website - www.bharatsanskritinyas.org
Follow us

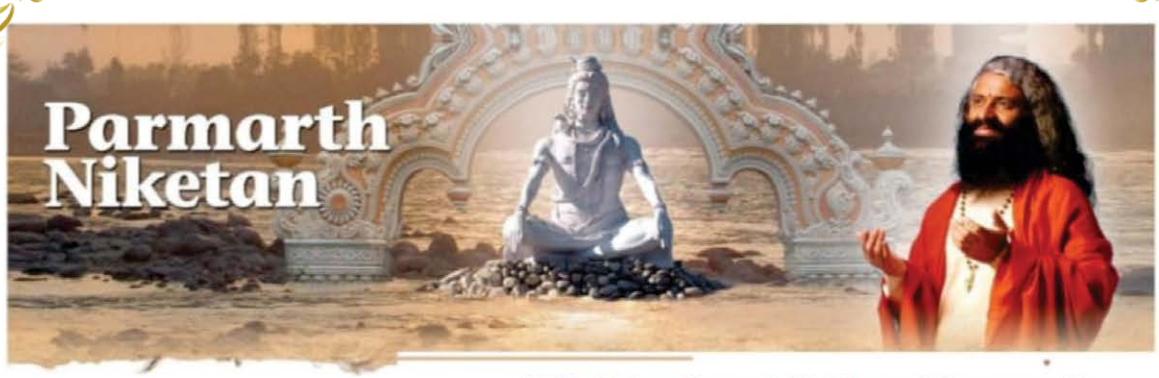


H.H. Pujya Swami Chidanand Saraswatiji
*President, Parmarth Niketan*

# आशीर्वाद

मुझे यह जानकर बहुत ही खुशी हो रही है कि भारत संस्कृति न्यास की मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व का नया अंक महाभारत काल के भारत वर्ष को केंद्र में रख कर गीता महोत्सव 2021के लिए विशेष रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक में अखंड भारत को केंद्रीय विषय वस्तु बनाया गया है, ऐसा मेरे संज्ञान में आया है। ऐसे गंभीर विंदु को लेकर पत्रिका का प्रकाशन अत्यंत श्रम और शोध का कार्य है। अखंड भारत का विषय मानव संस्कृति के संरक्षण का एक प्रकार से मूल विषय है। यह वर्तमान विश्व के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है।

ऐसे विषय को चुनने और इस पर पत्रिका का एक विशेषांक आयोजित करने के लिए संथापक संपादक श्री संजय तिवारी जी और समन्वय संपादक श्री विक्रमादित्य सिंह जी को हृदय से आशीर्वाद। इस विशेष अंक की मुझे प्रतीक्षा है।

। मंगलकामनाएं।

स्वामी चिदानन्द

स्वामी चिदानंद सरस्वती
परमाध्यक्ष, परमार्थ निकेतन,
ऋषिकेश

Prmarth Niketan Ashram, PO Swargashram, Rishikesh (Himalayas), Uttarakhand-249304 India Phone: +91-135-2440088, +91-135-2440070 , Fax: +91-135-2440066 .
swamiji@ Parmarth.com, www.PujyaSwamiji.org, OPujyaSwamiji , Twitter/@ PujyaSwamiji
t@ Parmarth.org, Facebook/ParmarthNiketan, O@ ParmarthNiketan ,Youtube/ParmarthNiketan

# शुभेच्छा

इस समय विश्व जिस संकट के दौर से गुजर रहा है उसमें मानव सभ्यता को संरक्षित करने के लिए केवल सनातन वैदिक संस्कृति में ही उम्मीद की किरण दिखाई पड़ रही है। महाभारत काल से अब तक पृथ्वी पर सभ्यताओं के अनगिनत परिवर्तन हुए हैं। मानव समुदाय को इन परिवर्तनों को सहने और समायोजित करने में कई प्रकार के संघर्षों का भी सामना करना पड़ा है। इतने विराट इतिहास को समेटना तो संभव नहीं है लेकिन भारतीय वांग्मय ऐसी धरोहर है जिससे जीवन के दर्शन प्राप्त होते हैं और मानव हित के सभी उपाय सहज ही मिल जाते हैं। श्रीमद्भवगतगीता जिस धरती से मनुष्य को प्राप्त हुई है उसी कुरूक्षेत्र के प्रागण में गीता महोत्सव का आयोजन बहुत महत्वपूर्ण है।

मुझे यह जानकर बहुत ही खुशी हो रही है कि भारत संस्कृति न्यास की मासिक पत्रिका संस्कृति पर्व का नया अंक महाभारत काल के भारत वर्ष को केंद्र में रख कर गीता महोत्सव 2021के लिए विशेष रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। इस अंक में अखंड भारत को केंद्रीय विषय वस्तु बनाया गया है, ऐसा मेरे संज्ञान में आया है। ऐसे गंभीर विंदु को लेकर पत्रिका का प्रकाशन अत्यंत श्रम और शोध का कार्य है। इस कार्य में संस्कृति पर्व के संस्थापक सम्पादक संजय तिवारी, समूह सम्पादक प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय और इस अंक के अतिथि सम्पादक विक्रमादित्य सिंह के साथ संस्कृति पर्व की सम्पादकीय परिषद को मैं ह्दय से बधाई देती हूं।

शुभकामनाएं।

**रेशमा एच सिंह**

राष्ट्रीय महामंत्री, राष्ट्रीय सुरक्षा जागरण मंच
अध्यक्ष सलाहकार परिषद संस्कृति पर्व

अतिथि सम्पादक

# महाभारत युद्ध से अभी तक
# सांस्कृतिक संघ की परिकल्पना

**सत्ता ही राज, समाज और सभ्यता की नियामक है। वह यदि अपने राजधर्म से संचालित है तो संस्कृति, समाज और सभ्यता में संतुलन बना रहेगा। यदि राजधर्म में ही विचलन या विखंडन है तो विकृतियां अपना जंगल उगा लेंगी। संस्कृति, सभ्यता, समाज और प्रकृति रुग्ण हो जाएंगी। कुछ भी स्वस्थ, सुखी और सकारात्मक नही दिखेगा। समृद्धि होगी पर असंगत। राजधर्म का निष्पादन करने वाला तंत्र या तो अकर्मण्य होगा अथवा निष्प्राण। तंत्र पर अधर्म प्रभावी होगा। ऐसे में समाज की पीड़ा सत्ता को पता भी चलेगी और सत्ता निरंकुश होकर स्वार्थी हो जाएगी।**

महाभारत युद्ध महापरिवर्तन का सबसे बड़ा संघर्ष रहा है। न तो इसके बाद पृथ्वी पर इतना बड़ा कोई संघर्ष हुआ न ही परिवर्तन ।यह परिवर्तन सामान्य नही था। भगवान राम के राज्य के बाद पृथ्वी पर मानव सभ्यता के नए युग का सूत्रपात महाभारत काल से ही होने के सभी प्रमाण मिलते हैं। ये प्रमाण पुष्ट भी हैं और सामने भी। भूमंडल के आकार प्रकार और खंडन विखंडन के सभी तत्व सामने से ही दिखने वाले हैं। महाभारत काल के महाक्रान्तिकारी और महानायक को अब हम भगवान श्रीकृष्ण के रूप में देख पाते हैं।

वास्तविकता यह है कि श्रीकृष्ण अपने समय, उसकी गति, उसकी धारा और उस समय की सभ्यता को बहुत गंभीरता से मथ रहे थे। वह बहुत पीछे से काल को समझ रहे थे। उनको सभ्यता के साथ पनप चुकी विकृतियों की चिंता थी। बचपन से ही जिन घटनाओं के वह साक्षी हो रहे थे या जो कथानक घटित होते देख रहे थे उससे वे क्षुब्ध थे। इसको एक अन्य उदाहरण से समझ सकते है। गंगापुत्र भीष्म का सभी आदर करते थे लेकिन गंगापुत्र की परिस्थितियों पर किसी ने शायद उस दृष्टि से नही देखने की कोशिश ही नही की जिसको कृष्ण देख भी रहे थे और उस स्थिति से दुखी भी हो रहे थे। एक ऐसा पुत्र जो अपने पिता की भोगवृत्ति पूरी करने के लिए स्वयं को आजीवन अविवाहित रहने का व्रत लेकर जीवन जीने लगता है। जो अपनी समग्र भोग इच्छाओं की बलि देकर भी हस्तिनापुर के सम्राट की सेवा में लगा है, भले ही सम्राट किसी भी तरह से विधि विरुद्ध या अयोग्य ही क्यो न हो। कृष्ण को ऐसे राज्य की व्यवस्था, परिपाटी और राजसत्ता के प्रति अनैतिक बंधन बहुत ही विचलित करता है। अपने जन्म से लेकर हस्तिनापुर के राजपरिवार का रिश्ता जुड़ने तक वह जो कुछ भी देखते हैं उसमें उनको कहीं भी न्याय होता दिखता नही है, और तत्कालीन समाज ऐसी गतिविधियों पर कोई प्रतिक्रिया भी नही करता प्रतीत होता। सत्ता और प्रजा के बीच की यह सन्नाटे वाली खाई बहुत ही दुखी करती है। राम के समय मे ऐसा नही था। उस समय प्रजा का बेहद महत्व था। आसुरी शक्तियों से लड़ने में सभी की सहभागिता होती थी। सम्राट को जितनी चिंता अपने साम्राज्य की थी उससे अधिक प्रजा के विचारों और प्रजा की भावनाओ की चिंता थी लेकिन कृष्ण अपने समय मे वैसा कुछ नही पाते। यहां वे सभी को अपनी अपनी जगह निरंकुश पाते हैं। नैतिक, अनैतिक, आचरण, अनाचारण, चरित्र, अचरित्र आदि में यहां न भेद मिल रहा न ही कोई प्रतिक्रिया। यह कैसी सभ्यता विकसित हुई है। कृष्ण अपने समय की सभ्यता में जब जब मनुष्यता की तलाश करने की कोशिश करते हैं, और भी उलझते ही जाते हैं। नीति और राजधर्म पर तो यहां जिद और स्वार्थ इतने भारी हैं कि नर नारी , ज्ञानी अज्ञानी, बड़े छोटे, रिश्ते नाते, विचार अथवा

विमर्श के सारे अवयव निष्प्राण हैं। प्रजा ऐसी कि राजपरिवार से उसका कोई संबंध ही नही। राजपरिवार की किसी घटना या किसी गतिविधि में प्रजा की न तो कोई भागीदारी है न कोई प्रतिक्रिया। राज्य सत्ता ऐसी है जिसको इस बात कोई चिंता ही नही कि उसके किसी कार्य या निर्णय से प्रजा अथवा समाज गलत दिशा में जा सकता है। समय के इस खंड में यह ऐसी सभ्यता स्थापित हो चुकी है जिसके केंद्र में संस्कृति, संस्कार और संवेदना को कोई स्थान ही दिखाई नही पड़ता। कृष्ण के लिए उनका समय किसी संत्रास जैसा है। सभ्यता की असंगति और संस्कृति का क्षरण उनकी सबसे बड़ी चिंता है। समय, संबंध और संवेदना को संस्कृति के पूर्ण स्वरूप के साथ स्थापित करने के लिए उस समूचे तंत्र को शोधित या परिवर्तित करना ही उस समय की सबसे बड़ी आवश्यकता लगने लगती है। इसी लिए कृष्ण इसी दिशा में कार्य करने को ज्यादा महत्व देते है।

सत्ता ही राज, समाज और सभ्यता की नियामक है। वह यदि अपने राजधर्म से संचालित है तो संस्कृति, समाज और सभ्यता में संतुलन बना रहेगा। यदि राजधर्म में ही विचलन या विखंडन है तो विकृतियां अपना जंगल उगा लेंगी। संस्कृति, सभ्यता, समाज और प्रकृति रुग्ण हो जाएंगी। कुछ भी स्वस्थ, सुखी और सकारात्मक नही दिखेगा। समृद्धि होगी पर असंगत। राजधर्म का निष्पादन करने वाला तंत्र या तो अकर्मण्य होगा अथवा निष्प्राण। तंत्र पर अधर्म प्रभावी होगा। ऐसे में समाज की पीड़ा सत्ता को पता भी चलेगी और सत्ता निरंकुश होकर स्वार्थी हो जाएगी। यह स्थिति भगवान श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों के ही समय मे दिखती है , जब तक वे स्वयं प्रभावी नही हो जाते है। श्रीराम ने तो रामराज्य की स्थापना कर एक सम्पूर्ण व्यवस्थित आदर्श राजधर्म का उदाहरण भी स्थापित कर दिया। श्रीकृष्ण ने राजधर्म की नीति को और भी परिष्कृत किया। उन्होंने कभी कोई सत्ता स्वयं नही सम्हाली किंतु सत्ता नीति या राजनीति का आदर्श अवश्य प्रतिपादित किया।

श्रीकृष्ण के जीवन की घटनाओं को विश्लेषित करने पर बहुत कुछ समझ मे आने लगता है। थोड़ी देर के लिए इस तथ्य को अलग भी कर दिया जाय कि श्रीकृष्ण स्वयं परमसत्ता के स्वरूप है, केवल एक इतिहासपुरुष या युग पुरुष के रूप में ही उनको देखें तो अनगिनत आदर्श, तथ्य, सत्य, नीति, कर्त्तव्य, दर्शन और आधार हमारे सामने आने लगते है। श्रीकृष्ण की नीति स्पष्ट है। धर्म, सत्य, न्याय और दर्शन की स्थापना के साथ इन नियामक तत्वों की समयानुकूल व्याख्या भी आवश्यक है। वह व्यक्ति ही सही है, जो धर्म, सत्य और न्याय के साथ है। महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण ने धर्म का साथ दिया था। धर्म अर्थात सत्य, न्याय और ईश्वर। सत्य किधर है, यह सोचना जरूरी है। थोड़ा विवेचन कीजिये कि महाभारत काल से आज तक युद्ध के मैदान और खेल बदलते रहे लेकिन युद्ध में जिस तरह से छल-कपट का खेल चलता आया है, उसी तरह का खेल आज भी जारी है। ऐसे में सत्य को हर मोर्चों पर कई बार हार का सामना करना पड़ता है, क्योंकि हर बार सत्य के साथ कोई कृष्ण साथ देने के लिए नहीं होते हैं। ऐसे में कृष्ण की नीति को समझना जरूरी है। श्रीकृष्ण की नीति तो स्पष्ट है, जब शत्रु शक्तिशाली हो तो उससे सीधे लड़ाई लड़ने की बजाय कूटनीति से लड़ना चाहिए। स्वयं श्रीकृष्ण ने कालयवन और जरासंध के साथ यही किया था। उन्होंने कालयवन को मुचुकुंद के हाथों मरने दिया था, तो जरासंध को भीम के हाथों। ये दोनों ही योद्धा सबसे शक्तिशाली थे लेकिन कृष्ण ने इन्हें युद्ध के पूर्व ही समाप्त कर दिया था। यह सच है कि सीधे रास्ते से सब पाना आसान नहीं होता। खासतौर पर तब जब आपको विरोधियों का पलड़ा भारी हो। ऐसे में कूटनीति का रास्ता ही श्रेयस्कर होता है। एक और महत्वपूर्ण बात, किसी प्रकार से युद्ध में संख्या बल महत्व नहीं रखता, बल्कि साहस, नीति और सही समय पर सही अस्त्र एवं व्यक्ति का उपयोग करना ही महत्वपूर्ण कार्य होता है। पांडवों की संख्या कम थी लेकिन कृष्ण की नीति के चलते वे जीत गए। उन्होंने घटोत्कच को युद्ध में तभी उतारा, जब उसकी जरूरत थी। उसका बलिदान व्यर्थ नहीं गया। उसके कारण ही कर्ण को अपना अचूक अस्त्र अमोघास्त्र चलाना पड़ा जिसे वह अर्जुन पर चलाना चाहता था। श्रीकृष्ण को आप चाहे जिस रूप में देखें, वह हर स्थान पर सम्पूर्ण मिलते है, अपने समग्र दर्शन और नीति के साथ। एक और उदाहरण से यह नीति स्पष्ट हो जाती है। वह स्थापना देते हैं कि यदि कभी भी आपको अपने शत्रु को मारने का मौका मिल रहा है, तो उसे तुरंत ही मार दीजिये क्योकि यदि वह बच गया तो निश्चित ही आपके लिए सिरदर्द बन जाएगा या हो सकता है कि वह आपकी हार का कारण भी बन जाए। अतः कोई भी शत्रु किसी भी हालत में बचकर न जाने पाए। श्रीकृष्ण ने आचार्य द्रोण और कर्ण के साथ यही किया। वह यह भी स्थापित करते हैं कि कोई भी वचन, संधि या समझौता अटल नहीं होता। यदि उससे राष्ट्र का, धर्म का, सत्य का अहित हो रहा हो तो उसे तोड़ देना ही चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने अस्त्र न उठाने की अपनी प्रतिज्ञा

तोड़कर धर्म की ही रक्षा की थी। जब अभिमन्यु को भीष्म के बनाये नियम के विरुद्ध निहत्था मार दिया गया तो श्रीकृष्ण ने भी फिर युद्ध के किसी भी नियम का पालन नहीं किया। अभिमन्यु श्रीकृष्ण का भांजा था। श्रीकृष्ण ने तब ही तय कर लिया था कि अब युद्ध में किसी भी प्रकार के नियमों को नहीं मानना है। तब शुरू हुआ श्रीकृष्ण का कूटनीतिक खेल। वह तो यह भी दिखाते हैं कि युद्ध प्रारंभ होने से यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि कौन किसकी ओर है, कौन शत्रु और कौन मित्र है। इससे युद्ध में किसी भी प्रकार की मतिभ्रम की स्थिति नहीं होती है। यह देखा जाता है कि ऐसे कई योद्धा मिलते हैं, जो विरोधी खेमे में होकर भीतरघात का काम करते हैं। ऐसे लोगों की पहचान करना जरूरी होता है।

## महाभारत का समय

महाभारत चंद्रवंशियों के दो परिवारों कौरव और पाण्डव के बीच हुए युद्ध का वृत्तांत है। 100 कौरव भाइयों और पाँच पाण्डव भाइयों के बीच भूमि के लिए जो संघर्ष चला उससे अन्ततः महाभारत युद्ध का सृजन हुआ। इस युद्ध की भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा कई भिन्न भिन्न निर्धारित की गयी तिथियाँ निम्नलिखित हैं-

विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ वराहमिहिर के अनुसार महाभारत युद्ध 2449 ईसा पूर्व हुआ था। विश्व विख्यात भारतीय गणितज्ञ एवं खगोलज्ञ आर्यभट के अनुसार महाभारत युद्ध 18 फ़रवरी 3102 ईसा पूर्व में हुआ था। चालुक्य राजवंश के सबसे महान सम्राट पुलकेसि 2 के 5वीं शताब्दी के ऐहोल अभिलेख में यह बताया गया है कि भारत युद्ध को हुए 3,735 वर्ष बीत गए है, इस दृष्टिकोण से महाभारत का युद्ध 3100 ईसा पूर्व लड़ा गया होगा। पुराणों की माने तो यह युद्ध 1900 ईसा पूर्व हुआ था, पुराणों में दी गई विभिन्न राज वंशावली को यदि चन्द्रगुप्त मौर्य से मिला कर देखा जाये तो 900 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है, परन्तु कुछ विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त मौर्य 1500 ईसा पूर्व में हुआ था, यदि यह माना जाये तो 3100 ईसा पूर्व की तिथि निकलती है क्योंकि यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में जिस चन्द्रगुप्त का उल्लेख किया था वो गुप्त वंश का राजा चन्द्रगुप्त भी हो सकता है। अधिकतर पश्चिमी विद्वान जैसे मायकल विटजल के अनुसार भारत युद्ध 1200 ईसा पूर्व में हुआ था, जो इसे भारत में लौह युग (200-800 ईसा पूर्व) से जोड़कर देखते हैं। अधिकतर भारतीय विद्वान जैसे बी ऐन अचर, एन एस राजाराम, के सदानन्द, सुभाष काक ग्रह-नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 3067 ईसा पूर्व और कुछ यूरोपीय विद्वान जैसे पी वी होले इसे 13 नवंबर 3143 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं। भारतीय विद्वान पी वी वारटक महाभारत में वर्णित ग्रह-नक्षत्रों की आकाशीय गणनाओं के आधार पर इसे 16 अक्टूबर 5561 ईसा पूर्व में आरम्भ हुआ मानते हैं। उनके अनुसार यूनान के राजदूत मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में अपनी भारत यात्रा के समय जमुना (यमुना) के तट पर बसे मेथोरा (मथुरा) राज्य में शूरसेनियों से भेंट का वर्णन किया था, मेगस्थनीज ने यह बताया था कि ये शूरसेनी किसी हेराकल्स नामक देवता की पूजा करते थे और ये हेराकल्स काफी चमत्कारी पुरुष होता था तथा चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले था। हेराकल्स ने कई विवाह किए और कई पुत्र उत्पन्न किए। परन्तु उसके सभी पुत्र आपस में युद्ध करके मारे गये। यहाँ ये स्पष्ट है कि ये हेराकल्स श्रीकृष्ण ही थे, विद्वान इन्हें हरिकृष्ण कह कर श्रीकृष्ण से जोड़ते है क्योंकि श्रीकृष्ण चन्द्रगुप्त से 138 पीढ़ी पहले थे तो यदि एक पीढी को 20-30 वर्ष दे तो 3100-5600 ईसा पूर्व श्रीकृष्ण का जन्म समय निकलता है अतः इस आधार पर महाभारत का युद्ध 5600-3100 ईसा पूर्व के समय हुआ होगा।

समय चाहे जो रहा हो, यह घटना हुई और आज इस घटना के बाद भी इसके प्रभाव में सभ्यता की यात्रा चल रही है। उस समय की कृष्ण की क्रांति का उद्देश्य धरती को शांत मानव जीवन देना ही था। धर्मसंस्पनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे का उनका उद्घोष आज भी संकल्प की प्रतीक्षा में है।

भारत भूखण्ड के विभाजित खण्डों को एक सूत्र में लाना वर्तमान विश्व की शान्ति के लिए अपरिहार्य है। ये सभी भूखण्ड एक राष्ट्र के स्वरूप में नहीं आ सकते लेकिन इनका सांस्कृतिक सूत्र बंधन बहुत कठिन नहीं है। विश्व के अनके भू भाग अलग-अलग राष्ट्र होकर भी एक संघीय सूत्र में सामने आकर कार्य कर रहे हैं। ऐसा भारत भूभाग से खण्डित हुए क्षेत्रों के साथ भी संभव है। सांस्कृतिक संघ की परिकल्पना को आकार तो दिया ही जा सकता है।

**विक्रमादित्य सिंह**

## प्रबंध सम्पादक की कलम से

महाभारत की धरती कुरुक्षेत्र में गीता महोत्सव का आयोजन वर्षों से हो रहा है। इस आयोजन में महाभारत कालीन स्थितियों की चर्चा हर साल होती है। भगवान श्रीकृष्ण के गीता के उपदेश पर मंथन भी होता है और अनेक मनीषियों, आचार्यों के व्याख्यान भी होते हैं। इस बार के आयोजन को लेकर संस्कृति पर्व ने जिस प्रकार से एक विशेषांक प्रकाशित करने की योजना पर कार्य किया है वह विशिष्ट भी है और भारत के इतिहास की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी। महाभारत कालीन भारत इस विशेषांक का केंद्रीय विषयवस्तु रखा गया है। ऐसा पहली बार हो रहा है कि किसी पत्रिका ने इस विषय को ही केंद्रित कर एक सम्पूर्ण अंक प्रकाशित करने की योजना पर कार्य किया है।

यह कार्य निश्चित रूप से बहुत ही श्रमसाध्य रहा है। इसके लिए संस्कृति पर्व की संपादकीय परिषद को मैं हृदय से बधाई दे रहा हूँ। आज के भारत और महाभारत कालीन भारत के संदर्भो को जुटाना और संपादित कर एक अंक में प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। मुझे विश्वास है कि संस्कृति पर्व का यह अंक भारत के इतिहास के लिए एक अमूल्य धरोहर के रूप में स्वीकार्य होगा।

बी के मिश्रा

# संस्कृति सत्ता और राजनीति

संजय तिवारी

संस्कृति नैसर्गिक है। राजनीति इसे सभ्यता के रंग में रंगने की कोशिश करती है। सत्ता सभ्यताओं को विकसित और विस्तृत करती है। भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति प्रकृति से समनवय की संस्कृति है जो सभ्यताओं के रंग में रंग जाने की बजाय अपने अस्तित्व के साथ वैश्विक साहचर्य स्थापित करती है। इसीलिए भारतीय सनातन वैदिक संस्कृति को केवल वर्तमान भारत भूभाग की सीमा में बांधने का प्रयास कभी सफल नहीं हो सकता। यह पृथ्वी पर मानव अस्तित्व का मूलाधार है। मिलेगी ही मिलेगी। रहेगी ही रहेगी। सभ्यताएं विकसित होकर नष्ट होती रहेंगी लेकिन सनातन संस्कृति और इसके प्रमाण अपने अस्तित्व और प्रतीकों के साथ सदैव विद्यमान रहेगें। इसीलिए वर्तमान विश्व के असंख्य भूखण्डों से उत्खनन और अन्य माध्यमों से मिलने वाले सांस्कृतिक प्रमाण एक नैसर्गिक सांस्कृतिक एकता का संदेश दे रहे हैं और उद्घघोष कर रहे हैं कि भूखण्ड चाहे जितने बन जाएं नैसर्गिक सांस्कृतिक महासंघ का केन्द्र भारतवर्ष ही होगा। भारत भारतीयता और सनातनता आपस में विभाजित नहीं हैं। पिछले चार हजार वर्षों में अब्राहमिक से लेकर चाहे जितने पंथ निर्मित हुए हों, उनके पीछे संस्कृति न होकर केवल सत्ता और राजनीति रही है। उनका पूरा वजूद ही राजनीतिक रहा है। विश्व समुदाय को इतिहास से अवश्य सीखना चाहिए। इतिहास इस प्रमाण के साथ उपस्थित है कि रोमन, चीनी, माया या इस तरह की जितनी भी सभ्यताएं विकसित हुई, एक निश्चित काल खण्ड के बाद ये सभी नष्ट हो गई। आज महान रोमन सभ्यता का कोई वजूद नहीं है। माया सभ्यता कहां चली गयी अब उस पर शोध हो रहे हैं। चीन की मूल सभ्यता बुद्ध के अस्तित्व में आने के बाद कहां गयी इसका कुछ पता नहीं। उन राजनैतिक संघों का भी कोई वजूद नहीं बचा है जो सत्ता के लिए समय सयम पर बनाये गये। उदाहरण के लिए- प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1919 में बना सोवियत संघ 1990 में खण्डित हो जाता है। यह अलग बात है कि इस विखण्डन में कोई सांस्कृतिक सापेक्षता सामने नहीं आती। इसीलिए यह तथ्य प्रमाणित है कि सत्ता और राजनीति के शिखर सीमांकन कर किसी भूखण्ड को राष्ट्र का दर्जा तो दे सकते हैं लेकिन उसमें संस्कृति के प्राण तत्व स्थापित नहीं कर सकते। इसका सबसे ताजा उदाहरण भारत का 1947 का विभाजन है जिसमें भारत के पूरब और पश्चिम के भूखण्डों को पाकिस्तान का नाम दिया गया। मात्र 25 वर्षों में पाकिस्तान विभाजित हो गया। कारण राजनीति और सत्ता। इसमें संस्कृति का कोई योगदान नहीं। यह अलग बात है कि विश्व को अलग भी कर दें तो भी सांस्कृतिक दृष्टि से समूचा भारतीय उपमहाद्वीप आज भी एक ही नजर आता है। किसी पंथ, मजहब या नवीन उपासना पद्धति से कभी भी संस्कृति का विभाजन संभव नहीं है। राजनीति अपने लिए अपनी सुविधा के लिए विभाजक रेखा खींचती है फिर भी संस्कृति की जड़ें इतनी गहरी हैं कि उन तक न तो राजनीति पहुंच पाती है और न ही सत्ता उसके मूल से उसे अलग कर पाती है। इसे केवल एक उदाहरण से समझा जा सकता है। आचार्य रामशरण पाठक और वरिष्ठ पत्रकार वेद प्रताप वैदिक ने 'वृहत्तर भारत' नामक एक ग्रंथ लिखा है जिसमें अफगानिस्तान को लेकर उन्होंने अनेक प्रामाणिक तथ्य प्रस्तुत

**भारत भारतीयता और सनातनता आपस में विभाजित नहीं हैं। पिछले चार हजार वर्षों में अब्राहमिक से लेकर चाहे जितने पंथ निर्मित हुए हों, उनके पीछे संस्कृति न होकर केवल सत्ता और राजनीति रही है। उनका पूरा वजूद ही राजनीतिक रहा है। विश्व समुदाय को इतिहास से अवश्य सीखना चाहिए। इतिहास इस प्रमाण के साथ उपस्थित है कि रोमन, चीनी, माया या इस तरह की जितनी भी सभ्यताएं विकसित हुई, एक निश्चित काल खण्ड के बाद ये सभी नष्ट हो गई। आज महान रोमन सभ्यता का कोई वजूद नहीं है। माया सभ्यता कहां चली गयी अब उस पर शोध हो रहे हैं।**

किये हैं। लेकखद्वय लिखते हैं कि ''17वीं सदी तक अफगानिस्तान नाम का कोई राष्ट्र नहीं था। अफगानिस्तान नाम का विशेष-प्रचलन अहमद शाह दुर्रानी के शासन-काल (1747-1773) में ही हुआ। इसके पूर्व अफगानिस्तान को आर्याना, आर्यानुम्र वीजू, पख्तिया, खुरासान, पश्तूनख्वाह और रोह आदि नामों से पुकारा जाता था जिसमें गांधार, कम्बोज, कुंभा, वर्णु, सुवास्तु आदि क्षेत्र थे। यहां हिन्दूकुश नाम का एक पहाड़ी क्षेत्र है जिसके उस पार कजाकिस्तान, रूस और चीन जाया जा सकता है। ईसा के 700 साल पूर्व तक यह स्थान आर्यों अर्थात् सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का था। इसके उत्तरी क्षेत्र में गांधार महाजनपद था जिसके बारे में भारतीय स्रोत महाभारत तथा अन्य ग्रंथों में वर्णन मिलता है। अफगानिस्तान की सबसे बड़ी होटलों की श्रृंखला का नाम 'आर्याना' था और हवाई कंपनी भी 'आर्याना' के नाम से जानी जाती थी। इस्लाम के पहले अफगानिस्तान को आर्याना, आर्यानुम्र वीजू, पख्तिया, खुरासान, पश्तूनख्वाह और रोह आदि नामों से पुकारा जाता था।

पारसी मत के प्रवर्तक जरथुस्त्र द्वारा रचित ग्रंथ 'जिंदावेस्ता' में इस भूखंड को ऐरीन-वीजो या आर्यानुम्र वीजो कहा गया है। आज भी अफगानिस्तान के गांवों में बच्चों के नाम आपको कनिष्क, आर्यन, वेद आदि मिलेंगे।

उत्तरी अफगानिस्तान का बल्ख प्रांत दुनिया की कुछ बेहद महत्वपूर्ण ऐतिहासिक विरासतों को सहेजे हुए है। इसके कुछ प्राचीन शहरों को दुनिया के सभी शहरों का जनक कहा जाता है। ये बल्ख के तराई इलाकों की समतल भूमि है जिसके प्राचीन व्यापारिक मार्ग ने खानाबदोशों, योद्धाओं, साहसी लोगों और धर्म प्रचारकों का ध्यान अपनी ओर खींचा। इन लोगों ने अपने पीछे यहां ऐसे रहस्यों को छोड़ा जिन्हें पुरातत्वविदों ने खोजना शुरू ही किया है।

अफगानिस्तान में 5,000 साल पुराना एक विमान मिला है। इस विमान के महाभारतकालीन होने का अनुमान है। यह खुलासा 'वायर्ड डॉट कॉम' की एक रिपोर्ट में भी किया गया है। रिपोर्ट के मुताबिक अफगानिस्तान की एक प्राचीन गुफा में रखा प्राचीन भारत का एक विमान पाया गया है। अब सवाल है कि ये इतने वर्षों तक सुरक्षित कैसे रहा। दरअसल, यह विमान 'टाइम वेल' में फंसा हुआ है। इसी कारण सुरक्षित बना हुआ है। ऐसा वैज्ञानिक बताते हैं कि 'टाइम वेल' इलेक्ट्रोमैग्नेटिक शॉकवेव्स से सुरक्षित क्षेत्र होता है और इस कारण से इस विमान के पास जाने की चेष्टा करने वाला कोई भी व्यक्ति इसके प्रभाव के कारण गायब या अदृश्य हो जाता है। कहा जा रहा है कि यह विमान महाभारतकाल का है और इसके आकार-प्रकार का विवरण महाभारत और अन्य प्राचीन ग्रंथों में किया गया है। इस कारण से इसे गुफा से निकालने की कोशिश करने वाले कई अमेरिकी सील कमांडो गायब हो गए हैं या फिर मारे गए हैं।

करीब 3,500 साल पहले एकेश्वरवादी धर्म की स्थापना करने वाले दार्शनिक जोरास्टर यहीं रहते थे। 13वीं शताब्दी के महान कवि रूमी का जन्म भी अफगानिस्तान में ही हुआ था। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी, महान संस्कृत व्याकरणाचार्य पाणिनी और गुरु गोरखनाथ अफगानिस्तान के ही बताये जाते हैं। पठान पख्तून होते हैं। पठान को पहले पक्ता कहा जाता था। ऋग्वेद के चौथे खंड के 44वें श्लोक में भी पख्तूनों का वर्णन 'पक्त्याकय' नाम से मिलता है। इसी तरह तीसरे खंड का 91वें श्लोक आफरीदी कबीले का जिक्र 'आपर्यतय' के नाम से मिलता है।

दरअसल, अंग्रेजी शासन में पिंडारियों के रूप में जो अंग्रेजों से लड़े, वे विशेषकर

**ईसा के 700 साल पूर्व तक यह स्थान आर्यों अर्थात् सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति का था। इसके उत्तरी क्षेत्र में गांधार महाजनपद था जिसके बारे में भारतीय स्रोत महाभारत तथा अन्य ग्रंथों में वर्णन मिलता है। अफगानिस्तान की सबसे बड़ी होटलों की श्रृंखला का नाम 'आर्याना' था और हवाई कंपनी भी 'आर्याना' के नाम से जानी जाती थी। इस्लाम के पहले अफगानिस्तान को आर्याना, आर्यानुम्र वीजू, पख्तिया, खुरासान, पश्तूनख्वाह और रोह आदि नामों से पुकारा जाता था।**

पठान और जाट ही थे। पठान जाट समुदाय का ही एक वर्ग है। कुछ लोग इन्हें बनी इसराइलियों का वंशज मानते हैं। अफगानिस्तान में पहले आर्यों के कबीले आबाद थे और वे सभी वैदिक धर्म का पालन करते थे, फिर बौद्ध धर्म के प्रचार के बाद यह स्थान बौद्धों का गढ़ बन गया। यहां के सभी लोग ध्यान और रहस्य की खोज में लग गए। इस्लाम के आगमन के बाद यहां एक नई क्रांति की शुरुआत हुई। बुद्ध के शांति के मार्ग को छोड़कर ये लोग क्रांति के मार्ग पर चल पड़े। शीतयुद्ध के दौरान अफगानिस्तान को तहस-नहस कर दिया गया। यहां की संस्कृति और प्राचीन धर्म के चिह्न मिटा दिए गए। आज से मात्र 300 वर्ष पूर्व तक अफगानिस्तान एक नाम से कोई राष्ट्र नहीं था। 6वीं सदी तक यह एक हिन्दू और बौद्ध बहुल क्षेत्र था। यहां के अलग-अलग क्षेत्रों में हिन्दू राजा राज करते थे। उनकी जाति कुछ भी रही हो, लेकिन वे सभी सनातन वैदिक आर्य थे। ऐस वर्णन मिलता है कि सन् 843 ईस्वी में कल्लार नामक राजा ने हिन्दूशाही की स्थापना की। तत्कालीन सिक्कों से पता चलता है कि कल्लार के पहले भी रुतविल या रणथल, स्पालपति और लगतुरमान नामक हिन्दू या बौद्ध राजाओं का गांधार प्रदेश में राज था। ये स्वयं को कनिष्क का वंशज भी मानते थे। हिन्दू राजाओं को 'काबुलशाहश् या 'महाराज धर्मपतिश् कहा जाता था। इन राजाओं में कल्लार, सामंतदेव, भीम, अष्टपाल, जयपाल, आनंदपाल, त्रिलोचनपाल, भीमपाल आदि उल्लेखनीय हैं। इन राजाओं ने लगभग 350 साल तक अरब आततायियों और लुटेरों को जबर्दस्त टक्कर दी और उन्हें सिंधु नदी पार करके भारत में नहीं घुसने दिया, लेकिन 1019 में महमूद गजनी से त्रिलोचनपाल की हार के साथ अफगानिस्तान का इतिहास पलटी खा गया। चीनी यात्री युवानच्वांग ने इस्लाम व अफगानिस्तान के बौद्धकाल का इतिहास लिखा है। गौतम बुद्ध अफगानिस्तान में लगभग 6 माह ठहरे थे। बौद्धकाल में अफगानिस्तान की राजधानी बामियान हुआ करती थी। सिकंदर का आक्रमण 328 ईसा पूर्व के समय हुआ, जब यहां प्रायः फारस के हखामनी शाहों का शासन था। वस्तुतः यह क्षेत्र अखंड भारत का हिस्सा था। ईरान के पार्थियन तथा भारतीय शकों के बीच बंटने के बाद अफगानिस्तान के आज के भू-भाग पर सासानी शासन आया।

विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद में पख्तून लोगों और अफगान नदियों का उल्लेख है। सुदास-संवरण के बीच हुए दाशराज्ञ युद्ध में 'पख्तूनों' का उल्लेख पुरू (ययाति के कुल के) कबीले के सहयोगियों के रूप में हुआ है। जिन नदियों को आजकल हम आमू, काबुल, कुर्रम, रंगा, गोमल, हरिरुद आदि नामों से जानते हैं, उन्हें प्राचीन भारतीय लोग क्रमशरू वक्षु, कुभा, कुरम, रसा, गोमती, हर्यू या सर्यू के नाम से जानते थे। जिन स्थानों के नाम आजकल काबुल, कंधार, बल्ख, वाखान, बगराम, पामीर, बदख्शां, पेशावर, स्वात, चारसद्दा आदि हैं, उन्हें संस्कृत और प्राकृत-पालि साहित्य में क्रमशरू कुभा या कुहका, गंधार, बाल्हीक, वोक्काण, कपिशा, मेरू, कम्बोज, पुरुषपुर (पेशावर), सुवास्तु, पुष्कलावती आदि के नाम से जाना जाता था। महाभारत में गांधारी के देश के अनेक संदर्भ मिलते हैं। हस्तिनापुर के राजा संवरण पर जब सुदास ने आक्रमण किया तो संवरण की सहायता के लिए 'पस्थ' लोग पश्चिम से आए थे। छांदोग्य उपनिषद, मार्कंडेय पुराण, ब्राह्मण ग्रंथों तथा बौद्ध साहित्य में इसका विस्तार से वर्णन पढ़कर लगता है कि हिन्दुओं का मूल स्थान तो सिन्धु के आसपास का क्षेत्र ही है। यदि अफगानिस्तान को अपने स्मृति-पटल से हटा दिया जाए तो भारत का सांस्कृतिक-इतिहास लिखना असंभव है। चीनी इतिहासकारों ने लिखा है कि सन् 383 से लेकर 810 तक अनेक बौद्ध ग्रंथों का चीनी अनुवाद अफगान बौद्ध भिक्षुओं ने ही किया था। बौद्ध धर्म की 'महायान' शाखा का प्रारंभ अफगानिस्तान में ही हुआ। आजकल हम जिस बगराम हवाई अड्डे का नाम बहुत सुनते हैं, वह कभी कुषाणों की राजधानी था। उसका नाम था कपीसी।''

आचार्य पाठक और वेद प्रताप वैदिक जी के इस ग्रंथ को छोड़ भी दिया जाये तो अफगानिस्तान के बारे में वर्णित तथ्यों से भी अधिक तथ्य कई अन्य देशों से भी प्राप्त हो रहे हैं जो यह प्रमाणित कर रहे हैं कि सनानत हिन्दू वैदिक संस्कृति में ही मनुष्य का मूल स्थापित है। अफगानिस्तान तो भारतीय भूखण्ड के निकट भी है और महान हिन्दूकुश के शिखर वहां अभी भी विद्यमान हैं लेकिन भारत के आस-पास के बाकी भी भूखण्डों को जब इतिहास और प्राचीनता की दृष्टि से देखने का प्रयास किया जाता है तो यह स्वयं में एक नैसर्गिक महासंघ जैसा ही दिखता है जिसकी मूल संस्कृति एक ही है सिर्फ राजनीति और सत्ताएं अलग-अलग हैं।

# सत्सङ्ग

## सिद्धांत और जीवन

गीता भारतीय दर्शन का सार ग्रंथ है। गीता ज्ञान-गीत है। गीता अत्यंत सरल और सरस श्लोकों में आध्यात्मिक चिंतन के साथ-साथ लोक-व्यवहार के निर्देश प्रस्तुत करने वाली एक ऐसी लघु पुस्तिका है, जो तनावरहित जीवन जीने की कला सिखाती है, जीवन-मृत्यु के चक्र का स्पष्टीकरण देती है, ईश्वर के प्रति अपने-अपने तरीके से निष्ठा रखने का मंत्र देती है और प्रतीक रूप में यह समझा देती है कि इस संपूर्ण विश्व की सृष्टि और संचालन के पीछे क्या विज्ञान है तथा इस समष्टि में हमारी व्यक्तिगत हैसियत क्या है।

यह जानना हमारे लिए कम महत्वपूर्ण नहीं है कि इस संपूर्ण विस्तृत जगत में एवं अनंत कालचक्र में हमारी हस्ती एक रजकण के बराबर होने के बावजूद उस परम सत्ता की एक किरण, एक दिव्य ज्योति हम में विद्यमान है। उसी आस्था और विश्वास के साथ हमें अपना लोक व्यवहार करते हुए अपने जीवन को दिव्य बनाने की ओर प्रयत्नशील रहना है।

## अखंड भारत के खंडन का इतिहास

# ढ़ाई हजार वर्षों में भारत भूखण्ड का 1947 में 24वां विभाजन हुआ

डॉ. इन्द्रेश कुमार

**भारत के विभाजन का इतिहास आजकल चर्चा में है। वर्ष 1857 से 1947 की बीच भारत भूखण्ड के विभाजन से सात नये राष्ट्र बन चुके हैं। इससे पूर्व के इतिहास पर दृष्टि डालें तो सम्राट युधिष्ठिर के समय के भारत भूखण्ड का विभाजन वर्तमान में 55 नये राष्ट्रों के रूप में दिखता है। यह भूखण्ड का विभाजन है। क्योंकि इन सभी राष्ट्रों में संस्कृति के मूल तत्व भारतीय ही मिलते हैं। यह विमर्श भी इसीलिए है कि सांस्कृतिक मूल के आधार पर शान्ति और सम्प्रभुता सम्पन्न मानव संस्कृति एक होकर कैसे कार्य करे। अखण्ड भारत की परिकल्पना केवल कल्पना नहीं है बल्कि समय की बहुत बड़ी आवश्यकता भी है।**

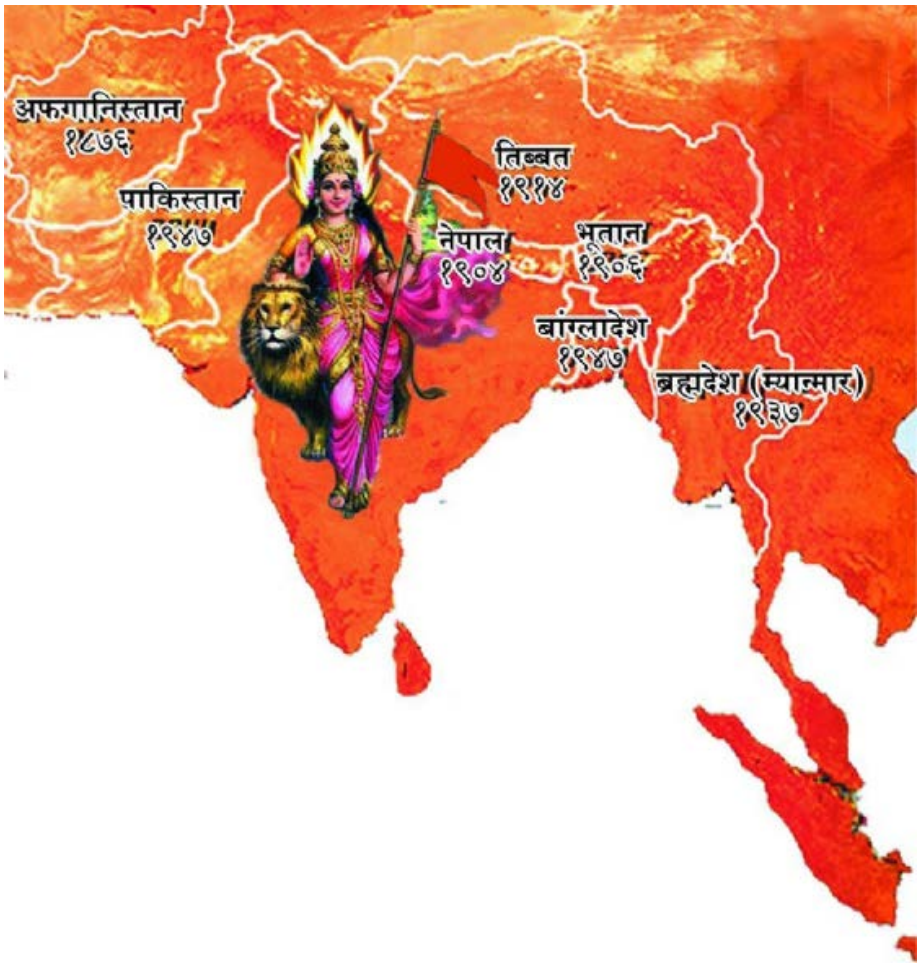


**सम्पूर्ण पृथ्वी का जब जल और थल इन दो तत्वों में वर्गीकरण करते हैं, तब सात द्वीप एवं सात महासमुद्र माने जाते हैं। हम इसमें से प्राचीन नाम जम्बूद्वीप जिसे आज एशिया द्वीप कहते हैं तथा इन्दू सरोवरम् जिसे आज हिन्दू महासागर कहते हैं, के निवासी हैं। इस जम्बूद्वीप (एशिया) के लगभग मध्य में हिमालय पर्वत स्थित है। हिमालय पर्वत में विश्व की सर्वाधिक ऊँची चोटी सागरमाथा, गौरीशंकर हैं, जिसे 1835 में अंग्रेज शासकों ने एवरेस्ट नाम देकर इसकी प्राचीनता व पहचान को बदलने का कूटनीतिक षड्यंत्र रचा।**

*लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वरिष्ठ प्रचारक एवं राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य हैं।*
*वाराणसी*

सम्भवतः ही कोई पुस्तक (ग्रन्थ) होगी जिसमें यह वर्णन मिलता हो कि इन आक्रमणकारियों ने अफगानिस्तान, (म्यांमार), श्रीलंका (सिंहलद्वीप),नेपाल, तिब्बत (त्रिविष्टप), भूटान, पाकिस्तान, मालद्वीप या बांग्लादेश पर आक्रमण किया। यहां एक प्रश्न खड़ा होता है कि यह भू-प्रदेश कब, कैसे गुलाम हुए और स्वतन्त्र हुए। प्रायः पाकिस्तान व बांग्लादेश निर्माण का इतिहास तो सभी जानते हैं। शेष इतिहास मिलता तो है परन्तु चर्चित नहीं है। सन 1947 में विशाल भारतवर्ष का पिछले 2500 वर्षों में 24वां विभाजन है।

सम्पूर्ण पृथ्वी का जब जल और थल इन दो तत्वों में वर्गीकरण करते हैं, तब सात द्वीप एवं सात महासमुद्र माने जाते हैं। हम इसमें से प्राचीन नाम जम्बूद्वीप जिसे आज एशिया द्वीप कहते हैं तथा इन्दू सरोवरम् जिसे आज हिन्दू महासागर कहते हैं, के निवासी हैं। इस जम्बूद्वीप (एशिया) के लगभग मध्य में हिमालय पर्वत स्थित है। हिमालय पर्वत में विश्व की सर्वाधिक ऊँची चोटी सागरमाथा, गौरीशंकर हैं, जिसे 1835 में अंग्रेज शासकों ने एवरेस्ट नाम देकर इसकी प्राचीनता व पहचान को बदलने का कूटनीतिक षड्यंत्र रचा।

हम पृथ्वी पर जिस भू-भाग अर्थात् राष्ट्र के निवासी हैं उस भू-भाग का वर्णन अग्नि,वायु एवं विष्णु पुराण में लगभग समानार्थी श्लोक के रूप में है :-

**उत्तरं यत् समुद्रस्य, हिमाद्रश्चैव दक्षिणम्।**
**वर्ष तद् भारतं नाम, भारती यत्र संतति।।**

अर्थात् हिन्द महासागर के उत्तर में तथा हिमालय पर्वत के दक्षिण में जो भू-भाग है उसे भारत कहते हैं और वहां के समाज को भारती या भारतीय के नाम से पहचानते हैं।

वर्तमान में भारत के निवासियों का पिछले सैकडों हजारों वर्षों से हिन्दू नाम भी प्रचलित है और हिन्दुओं के देश को हिन्दुस्तान कहते हैं। विश्व के अनेक देश इसे हिन्द व नागरिक को हिन्दी व हिन्दुस्तानी भी कहते हैं। बृहस्पति आगम में इसके लिए निम्न श्लोक उपलब्ध है :-

**हिमालयं समारम्भ्य यावद् इन्दु सरोवरम।**
**तं देव निर्मित देशं, हिन्दुस्थानं प्रचक्षते।।**

अर्थात् हिमालय से लेकर इन्दु (हिन्द) महासागर तक देव पुरुषों द्वारा निर्मित इस भूगोल को हिन्दुस्तान कहते हैं। इन सब बातों से यह निश्चित हो जाता है कि भारतवर्ष और हिन्दुस्तान एक ही देश के नाम हैं तथा भारतीय और हिन्दू एक ही समाज के नाम हैं।

जब हम अपने देश (राष्ट्र) का विचार करते हैं तब अपने समाज में प्रचलित एक परम्परा रही है, जिसमें किसी भी शुभ कार्य पर संकल्प पढ़ा अर्थात् लिया जाता है। संकल्प स्वयं में महत्वपूर्ण संकेत करता है। संकल्प में काल की गणना एवं भूखण्ड का विस्तृत वर्णन करते हुए, संकल्प कर्ता कौन है इसकी पहचान अंकित करने की परम्परा है। उसके अनुसार संकल्प में भू-खण्ड की चर्चा करते हुए बोलते (दोहराते) हैं कि जम्बूद्वीपे (एशिया) भरतखण्डे (भारतवर्ष) यही शब्द प्रयोग होता है। सम्पूर्ण साहित्य में हमारे राष्ट्र की सीमाओं का उत्तर में हिमालय व दक्षिण में हिन्द

महासागर का वर्णन है, परन्तु पूर्व व पश्चिम का स्पष्ट वर्णन नहीं है। परंतु जब श्लोकों की गहराई में जाएं और भूगोल की पुस्तकों अर्थात् एटलस का अध्ययन करें तभी ध्यान में आ जाता है कि श्लोक में पूर्व व पश्चिम दिशा का वर्णन है। जब विश्व (पृथ्वी) का मानचित्र आँखों के सामने आता है तो पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि विश्व के भूगोल ग्रन्थों के अनुसार हिमालय के मध्य स्थल 'कैलाश मानसरोवर' से पूर्व की ओर जाएं तो वर्तमान का इण्डोनेशिया और पश्चिम की ओर जाएं तो वर्तमान में ईरान देश अर्थात् आर्यान प्रदेश हिमालय के अंतिम छोर हैं। हिमालय 5000 पर्वत श्रृंखलाओं तथा 6000 नदियों को अपने भीतर समेटे हुए इसी प्रकार से विश्व के सभी भूगोल ग्रन्थ (एटलस) के अनुसार जब हम श्रीलंका (सिंहलद्वीप अथवा सिलोन) या कन्याकुमारी से पूर्व व पश्चिम की ओर प्रस्थान करेंगे या दृष्टि (नजर) डालेंगे तो हिन्द (इन्दु) महासागर इण्डोनेशिया व आर्यान (ईरान) तक ही है। इन मिलन बिन्दुओं के पश्चात् ही दोनों ओर महासागर का नाम बदलता है।

**हिमालय 5000 पर्वत श्रृंखलाओं तथा 6000 नदियों को अपने भीतर समेटे हुए इसी प्रकार से विश्व के सभी भूगोल ग्रन्थ (एटलस) के अनुसार जब हम श्रीलंका (सिंहलद्वीप अथवा सिलोन) या कन्याकुमारी से पूर्व व पश्चिम की ओर प्रस्थान करेंगे या दृष्टि (नजर) डालेंगे तो हिन्द (इन्दु) महासागर इण्डोनेशिया व आर्यान (ईरान) तक ही है। इन मिलन बिन्दुओं के पश्चात् ही दोनों ओर महासागर का नाम बदलता है।**

इस प्रकार से हिमालय, हिन्द महासागर, आर्यान (ईरान) व इण्डोनेशिया के बीच के सम्पूर्ण भू-भाग को आर्यावर्त अथवा भारतवर्ष अथवा हिन्दुस्तान कहा जाता है। प्राचीन भारत की चर्चा अभी तक की, परन्तु जब वर्तमान से 3000 वर्ष पूर्व तक के भारत की चर्चा करते हैं तब यह ध्यान में आता है कि पिछले 2500 वर्ष में जो भी आक्रांत यूनानी (रोमन ग्रीक) यवन, हूण, शक, कुषाण, सिरयन, पुर्तगाली, फेंच,डच, अरब, तुर्क, तातार, मुगल व अंग्रेज आदि आए, इन सबका विश्व के सभी इतिहासकारों ने वर्णन किया। परन्तु सभी पुस्तकों में यह प्राप्त होता है कि आक्रान्ताओं ने भारतवर्ष पर, हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया है। सम्भवतः ही कोई पुस्तक (ग्रन्थ) होगी जिसमें यह वर्णन मिलता हो कि इन आक्रमणकारियों ने अफगानिस्तान, (म्यांमार),श्रीलंका (सिंहलद्वीप), नेपाल, तिब्बत (त्रिविष्टप), भूटान, पाकिस्तान,मालद्वीप या बांग्लादेश पर आक्रमण किया। यहां एक प्रश्न खड़ा होता है कि यह भू-प्रदेश कब, कैसे गुलाम हुए और स्वतन्त्र हुए। प्रायः पाकिस्तान व बांग्लादेश निर्माण का इतिहास तो सभी जानते हैं। शेष इतिहास मिलता तो है परन्तु चर्चित नहीं है। सन 1947 में विशाल भारतवर्ष का पिछले 2500 वर्षों में 24वां विभाजन है। अंग्रेज का 350 वर्ष पूर्व के लगभग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के रूप में व्यापारी बनकर भारत आना, फिर धीरे-धीरे शासक बनना और उसके पश्चात् सन 1857 से 1947 तक उनके द्वारा किया गया भारत का 7वां विभाजन है। आगे लेख में सातों विभाजन कब और क्यों किए गए इसका संक्षिप्त वर्णन है।

सन् 1857 में भारत का क्षेत्रफल 83 लाख वर्ग कि.मी. था। वर्तमान भारत का क्षेत्रफल 33 लाख वर्ग कि.मी. है। पड़ोसी 9 देशों का क्षेत्रफल 50 लाख वर्ग कि.मी. बनता है।

भारतीयों द्वारा सन् 1857 के अंग्रेजों के विरुद्ध लड़े गए स्वतन्त्रता संग्राम (जिसे अंग्रेज ने गदर या बगावत कहा) से पूर्व एवं पश्चात् के परिदृश्य पर नजर दौडायेंगे तो ध्यान में आएगा कि ई. सन् 1800 अथवा उससे पूर्व के विश्व के देशों की सूची में वर्तमान भारत के चारों ओर जो आज देश माने जाते हैं उस समय देश नहीं थे। इनमें स्वतन्त्र राजसत्ताएं थीं,परन्तु सांस्कृतिक रूप में ये सभी भारतवर्ष के रूप में एक थे और एक-दूसरे के देश में आवागमन (व्यापार, तीर्थ दर्शन, रिश्ते, पर्यटन आदि) पूर्ण रूप से बे-रोकटोक था। इन राज्यों के विद्वान् व लेखकों ने जो भी लिखा वह विदेशी यात्रियों ने लिखा ऐसा नहीं माना जाता है। इन सभी राज्यों की भाषाएं व बोलियों में अधिकांश शब्द संस्कृत के ही हैं। मान्यताएं व परम्पराएं भी समान हैं। खान-पान, भाषा-बोली, वेशभूषा,संगीत-नृत्य, पूजापाठ, पंथ सम्प्रदाय में विविधताएं होते हुए भी एकता के दर्शन होते थे और होते हैं। जैसे-जैसे इनमें से कुछ राज्यों में भारत इतर यानि विदेशी पंथ (मजहब-रिलीजन) आये तब अनेक संकट व सम्भ्रम निर्माण करने के प्रयास हुए।

सन 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम से पूर्व-मार्क्स द्वारा अर्थ प्रधान परन्तु आक्रामक व हिंसक विचार के रूप में मार्क्सवाद जिसे लेनिनवाद, माओवाद, साम्यवाद, कम्यूनिज्म शब्दों से भी पहचाना जाता है, यह अपने पांव अनेक देशों में पसार चुका था। वर्तमान रूस व चीन जो अपने चारों ओर के अनेक छोटे-बडे राज्यों को अपने में समाहित कर चुके थे या कर रहे थे, वे कम्यूनिज्म के सबसे बडे व शक्तिशाली देश पहचाने जाते हैं। ये दोनों रूस और चीन विस्तारवादी, साम्राज्यवादी, मानसिकता

वाले ही देश हैं। अंग्रेज का भी उस समय लगभग आधी दुनिया पर राज्य माना जाता था और उसकी साम्राज्यवादी,विस्तारवादी, हिंसक व कुटिलता स्पष्ट रूप से सामने थी।

## अफगानिस्तान

सन् 1834 में प्रकिया प्रारम्भ हुई और 26 मई, 1876 को रूसी व ब्रिटिश शासकों (भारत) के बीच गंडामक संधि के रूप में निर्णय हुआ और अफगानिस्तान नाम से एक बफर स्टेट अर्थात् राजनैतिक देश को दोनों ताकतों के बीच स्थापित किया गया। इससे अफगानिस्तान अर्थात् पठान भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम से अलग हो गए तथा दोनों ताकतों ने एक-दूसरे से अपनी रक्षा का मार्ग भी खोज लिया। परंतु इन दोनों पूंजीवादी व मार्क्सवादी ताकतों में अंदरूनी संघर्ष सदैव बना रहा कि अफगानिस्तान पर नियन्त्रण किसका हो? अफगानिस्तान (उपगणस्तान) शैव व प्रकृति पूजक मत से बौद्ध मतावलम्बी और फिर विदेशी पंथ इस्लाम मतावलम्बी हो चुका था। बादशाह शाहजहाँ, शेरशाह सूरी व महाराजा रणजीत सिंह के शासनकाल में उनके राज्य में कंधार (गंधार) आदि का स्पष्ट वर्णन मिलता है।

## नेपाल

मध्य हिमालय के 46 से अधिक छोटे-बडे राज्यों को संगठित कर पृथ्वी नारायण शाह नेपाल नाम से एक राज्य का सुगठन कर चुके थे। स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानियों ने इस क्षेत्र में अंग्रेजों के विरुद्ध लडते समय-समय पर शरण ली थी। अंग्रेज ने विचारपूर्वक 1904 में वर्तमान के बिहार स्थित सुगौली नामक स्थान पर उस समय के पहाड़ी राजाओं के नरेश से संधी कर नेपाल को एक स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान कर अपना रेजीडेंट बैठा दिया। इस प्रकार से नेपाल स्वतन्त्र राज्य होने पर भी अंग्रेज के अप्रत्यक्ष अधीन ही था। रेजीडेंट के बिना महाराजा को कुछ भी खरीदने तक की अनुमति नहीं थी। इस कारण राजा-महाराजाओं में जहां आन्तरिक तनाव था, वहीं अंग्रेजी नियन्त्रण से कुछ में घोर बेचैनी भी थी। महाराजा त्रिभुवन सिंह ने 1953 में भारतीय सरकार को निवेदन किया था कि आप नेपाल को अन्य राज्यों की तरह भारत में मिलाएं। परन्तु सन 1955 में रूस द्वारा दो बार वीटो का उपयोग कर यह कहने के बावजूद कि नेपाल तो भारत का ही अंग है, भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने पुरजोर वकालत कर नेपाल को स्वतन्त्र देश के रूप में यू.एन.ओ. में मान्यता दिलवाई। आज भी नेपाल व भारतीय एक-दूसरे के देश में विदेशी नहीं हैं और यह भी सत्य है कि नेपाल को वर्तमान भारत के साथ ही सन् 1947 में ही स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। नेपाल 1947 में ही अंग्रेजी रेजीडेंसी से मुक्त हुआ।

## भूटान

सन 1906 में सिक्किम व भूटान जो कि वैदिक-बौद्ध मान्यताओं के मिले-जुले समाज के छोटे भू-भाग थे इन्हें स्वतन्त्रता संग्राम से लगकर अपने प्रत्यक्ष नियन्त्रण से रेजीडेंट के माध्यम से रखकर चीन के विस्तारवाद पर अंग्रेज ने नजर रखना प्रारम्भ किया। ये क्षेत्र(राज्य) भी स्वतन्त्रता सेनानियों एवं समय-समय पर हिन्दुस्तान के उत्तर दक्षिण व पश्चिम के भारतीय सिपाहियों व समाज के नाना प्रकार के विदेशी हमलावरों से युद्धों में पराजित होने पर शरणस्थली के रूप में काम आते थे। दूसरा ज्ञान (सत्य, अहिंसा, करुणा) के उपासक वे क्षेत्र खनिज व वनस्पति की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे। तीसरा यहां के जातीय जीवन को धीरे-धीरे मुख्य भारतीय (हिन्दू) धारा से अलग कर मतान्तरित किया जा सकेगा। हम जानते हैं कि सन 1836 में उत्तर भारत में चर्च ने अत्यधिक विस्तार कर नये आयामों की रचना कर डाली थी। सुदूर हिमालयवासियों में ईसाईयत जोर पकड़ रही थी।

## तिब्बत

सन 1914 में तिब्बत को केवल एक पार्टी मानते हुए चीनी साम्राज्यवादी सरकार व भारत के काफी बड़े भू-भाग पर कब्जा जमाए अंग्रेज शासकों के बीच एक समझौता हुआ। भारत और चीन के बीच तिब्बत को एक बफर स्टेट के रूप में मान्यता देते हुए हिमालय को विभाजित करने के लिए मैकमोहन रेखा निर्माण करने का निर्णय हुआ। हिमालय सदैव से ज्ञान-विज्ञान के शोध व चिन्तन का केंद्र रहा है। हिमालय को बांटना और तिब्बत व भारतीय को अलग करना यह षड्यंत्र रचा गया। चीनी और अंग्रेज शासकों ने एक-दूसरों

**भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने समय की नाजकता को पहचानने में भूल कर दी और इसी कारण तिब्बत को सन 1949 से 1959 के बीच चीन हड़पने में सफल हो गया। पंचशील समझौते की समाप्ति के साथ ही अक्टूबर सन 1962 में चीन ने भारत पर हमला कर हजारों वर्ग कि.मी. अक्साई चीन (लद्दाख यानि जम्मू-कश्मीर) व अरुणाचल आदि को कब्जे में कर लिया। तिब्बत को चीन का भू-भाग मानने का निर्णय पं. नेहरू (तत्कालीन प्रधानमंत्री) की भारी ऐतिहासिक भूल हुई।**

के विस्तारवादी,साम्राज्यवादी मनसूबों को लगाम लगाने के लिए कूटनीतिक खेल खेला। अंग्रेज ईसाईयत हिमालय में कैसे अपने पांव जमायेगी, यह सोच रहा था परन्तु समय ने कुछ ऐसी करवट ली कि प्रथम व द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेज को एशिया और विशेष रूप से भारत छोड़कर जाना पड़ा। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने समय की नाजकता को पहचानने में भूल कर दी और इसी कारण तिब्बत को सन 1949 से 1959 के बीच चीन हड़पने में सफल हो गया। पंचशील समझौते की समाप्ति के साथ ही अक्टूबर सन 1962 में चीन ने भारत पर हमला कर हजारों वर्ग कि.मी. अक्साई चीन (लद्दाख यानि जम्मू-कश्मीर) व अरुणाचल आदि को कब्जे में कर लिया। तिब्बत को चीन का भू-भाग मानने का निर्णय पं. नेहरू (तत्कालीन प्रधानमंत्री) की भारी ऐतिहासिक भूल हुई। आज भी तिब्बत को चीन का भू-भाग मानना और चीन पर तिब्बत की निर्वासित सरकार से बात कर मामले को सुलझाने हेतु दबाव न डालना बड़ी कमजोरी व भूल है। नवम्बर 1962 में भारत के दोनों सदनों के संसद सदस्यों ने एकजुट होकर चीन से एक-एक इंच जमीन खाली करवाने का संकल्प लिया। आश्चर्य है भारतीय नेतृत्व (सभी दल) उस संकल्प को शायद भूल ही बैठा है। हिमालय परिवार नाम के आन्दोलन ने उस दिवस को मनाना प्रारम्भ किया है ताकि जनता नेताओं द्वारा लिए गए संकल्प को याद करवाएं।

**अंग्रेज ईसाईयत हिमालय में कैसे अपने पांव जमायेगी, यह सोच रहा था परन्तु समय ने कुछ ऐसी करवट ली कि प्रथम व द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् अंग्रेज को एशिया और विशेष रूप से भारत छोड़कर जाना पड़ा। भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने समय की नाजकता को पहचानने में भूल कर दी और इसी कारण तिब्बत को सन 1949 से 1959 के बीच चीन हड़पने में सफल हो गया।**

## श्रीलंका व म्यांमार

अंग्रेज प्रथम महायुद्ध (1914 से 1919) जीतने में सफल तो हुए परन्तु भारतीय सैनिक शक्ति के आधार पर। धीरे-धीरे स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु क्रान्तिकारियों के रूप में भयानक ज्वाला अंग्रेज को भस्म करने लगी थी। सत्याग्रह, स्वदेशी के मार्ग से आम जनता अंग्रेज के कुशासन के विरुद्ध खडी हो रही थी। द्वितीय महायुद्ध के बादल भी मण्डराने लगे थे। सन् 1935 व 1937 में ईसाई ताकतों को लगा कि उन्हें कभी भी भारत व एशिया से बोरिया-बिस्तर बांधना पड़ सकता है। उनकी अपनी स्थलीय शक्ति मजबूत नहीं है और न ही वे दूर से नभ व थल से वर्चस्व को बना सकते हैं। इसलिए जल मार्ग पर उनका कब्जा होना चाहिए तथा जल के किनारों पर भी उनके हितैषी राज्य होने चाहिए। समुद्र में अपना नौसैनिक बेड़ा बैठाने, उसके समर्थक राज्य स्थापित करने तथा स्वतन्त्रता संग्राम से उन भू-भागों व समाजों को अलग करने हेतु सन 1965 में श्रीलंका व सन 1937 में म्यांमार को अलग राजनीतिक देश की मान्यता दी। ये दोनों देश इन्हीं वर्षों को अपना स्वतन्त्रता दिवस मानते हैं। म्यांमार व श्रीलंका का अलग अस्तित्व प्रदान करते ही मतान्तरण का पूरा ताना-बाना जो पहले तैयार था उसे अधिक विस्तार व सुदृढ़ता भी इन देशों में प्रदान की गई। ये दोनों देश वैदिक, बौद्ध धार्मिक परम्पराओं को मानने वाले हैं। म्यांमार के अनेक स्थान विशेष रूप से रंगून का अंग्रेज द्वारा देशभक्त भारतीयों को कालेपानी की सजा देने के लिए जेल के रूप में भी उपयोग होता रहा है।

## पाकिस्तान, बांग्लादेश व मालद्वीप

1905 का लॉर्ड कर्जन का बंग-भंग का खेल 1911में बुरी तरह से विफल हो गया। परन्तु इस हिन्दु मुस्लिम एकता को तोड़ने हेतु अंग्रेज ने आगा खां के नेतृत्व में सन 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना कर मुस्लिम कौम का बीज बोया। पूर्वोत्तर भारत के अधिकांश जनजातीय जीवन को ईसाई के रूप में मतान्तरित किया जा रहा था। ईसाई बने भारतीयों को स्वतन्त्रता संग्राम से पूर्णतः अलग रखा गया। पूरे भारत में एक भी ईसाई सम्मेलन में स्वतन्त्रता के पक्ष में प्रस्ताव पारित नहीं हुआ। दूसरी ओर मुसलमान तुम एक अलग कौम हो, का बीज बोते हुए सन् 1940 में मोहम्मद अली जिन्ना के नेतृत्व में पाकिस्तान की मांग खड़ी कर देश को नफरत की आग में झोंक दिया। अंग्रेजीयत के दो एजेण्ट क्रमशः पं. नेहरू व मो. अली जिन्ना दोनों ही घोर महत्वाकांक्षी व जिद्दी (कट्टर) स्वभाव के थे। अंग्रेजों ने इन दोनों का उपयोग गुलाम भारत के विभाजन हेतु किया।

द्वितीय महायुद्ध में अंग्रेज बुरी तरह से आर्थिक, राजनीतिक दृष्टि से इंग्लैण्ड में तथा अन्य देशों में टूट चुके थे। उन्हें लगता था कि अब वापस जाना ही पड़ेगा और अंग्रेजी साम्राज्य में कभी न अस्त होने वाला सूर्य अब अस्त भी हुआ करेगा। सम्पूर्ण भारत देशभक्ति के स्वरों के साथ सड़क पर आ चुका था। संघ, सुभाष, सेना व समाज सब

अपने-अपने ढंग से स्वतन्त्रता की अलख जगा रहे थे। सन 1948 तक प्रतीक्षा न करते हुए 3 जून, 1947 को अंग्रेज अधीन भारत के विभाजन व स्वतन्त्रता की घोषणा औपचारिक रूप से कर दी गयी। यहां यह बात ध्यान में रखने वाली है कि उस समय भी भारत की 562 ऐसी छोटी-बड़ी रियासतें (राज्य) थीं, जो अंग्रेज के अधीन नहीं थीं। इनमें से सात ने आज के पाकिस्तान में तथा 555 ने जम्मू-कश्मीर सहित आज के भारत में विलय किया। भयानक रक्तपात व जनसंख्या की अदला-बदली के बीच 14, 15 अगस्त, 1947 की मध्यरात्रि में पश्चिम एवं पूर्व पाकिस्तान बनाकर अंग्रेज ने भारत का 7वां विभाजन कर डाला। आज ये दो भाग पाकिस्तान व बांग्लादेश के नाम से जाने जाते हैं। भारत के दक्षिण में सुदूर समुद्र में मालद्वीप (छोटे-छोटे टापुओं का समूह) सन 1947 में स्वतन्त्र देश बन गया, जिसकी चर्चा व जानकारी होना अत्यन्त महत्वपूर्ण व उपयोगी है। यह बिना किसी आन्दोलन व मांग के हुआ है।

## भारत का वर्तमान परिदृश्य

सन 1947 के पश्चात् फेंच के कब्जे से पाण्डिचेरी,पुर्तगीज के कब्जे से गोवा देव- दमन तथा अमेरिका के कब्जें में जाते हुए सिक्किम को मुक्त करवाया है। आज पाकिस्तान में पख्तून, बलूच, सिंधी, बाल्टीस्थानी (गिलगित मिलाकर), कश्मीरी मुजफ्फरावादी व मुहाजिर नाम से इस्लामाबाद (लाहौर) से आजादी के आन्दोलन चल रहे हैं। पाकिस्तान की 60 प्रतिशत से अधिक जमीन तथा 30 प्रतिशत से अधिक जनता पाकिस्तान से ही आजादी चाहती है। बांग्लादेश में बढ़ती जनसंख्या का विस्फोट, चटग्राम आजादी आन्दोलन उसे जर्जर कर रहा है। शिया-सुन्नी फसाद, अहमदिया व वोहरा (खोजा-मल्कि) पर होते जुल्म मजहबी टकराव को बोल रहे हैं। हिन्दुओं की सुरक्षा तो खतरे में ही है। विश्वभर का एक भी मुस्लिम देश इन दोनों देशों के मुसलमानों से थोडी भी सहानुभूति नहीं रखता। अगर सहानुभूति होती तो क्या इन देशों के 3 करोड़ से अधिक मुस्लिम (विशेष रूप से बांग्लादेशीय) दर-दर भटकते। ये मुस्लिम देश अपने किसी भी सम्मेलन में इनकी मदद हेतु आपस में कुछ-कुछ लाख बांटकर सम्मानपूर्वक बसा सकने का निर्णय ले सकते थे। परन्तु कोई भी मुस्लिम देश आजतक बांग्लादेशी मुसलमान की मदद में आगे नहीं आया। इन घुसपैठियों के कारण भारतीय मुसलमान अधिकाधिक गरीब व पिछड़ते जा रहा है क्योंकि इनके विकास की योजनाओं पर खर्च होने वाले धन व नौकरियों पर ही तो घुसपैठियों का कब्जा होता जा रहा है। मानवतावादी वेष को धारण कराने वाले देशों में से भी कोई आगे नहीं आया कि इन घुसपैठियों यानि दरबदर होते नागरिकों को अपने यहां बसाता या अन्य किसी प्रकार की सहायता देता। इन दर-बदर होते नागरिकों के आई.एस.आई. के एजेण्ट बनकर काम करने के कारण ही भारत के करोडों मुस्लिमों को भी सन्देह के घेरे में खड़ा कर दिया है। आतंकवाद व माओवाद लगभग 200 समूहों के रूप में भारत व भारतीयों को डस रहे हैं। लाखों उजड़ चुके हैं, हजारों विकलांग हैं और हजारों ही मारे जा चुके हैं। विदेशी ताकतें हथियार, प्रशिक्षण व जेहादी, मानसिकता देकर उन प्रदेश के लोगों के द्वारा वहां के ही लोगों को मरवा कर उन्हीं प्रदेशों को बर्बाद करवा रही हैं। इस विदेशी षड्यन्त्र को भी समझना आवश्यक है।

सांस्कृतिक व आर्थिक समूह की रचना आवश्य :-आवश्यकता है वर्तमान भारत व पड़ोसी भारतखण्डी देशों को एकजुट होकर शक्तिशाली बन खुशहाली अर्थात विकास के मार्ग में चलने की। इसलिए अंग्रेज अर्थात् ईसाईयत द्वारा रचे गये षड्यन्त्र को ये सभी देश (राज्य) समझें और साझा व्यापार व एक करन्सी निर्माण कर नए होते इस क्षेत्र के युग का सूत्रपात करें। इन देशों 10 का समूह बनाने से प्रत्येक देश का भय का वातावरण समाप्त हो जायेगा तथा प्रत्येक देश का प्रतिवर्ष के सैंकड़ों-हजारों-करोड़ों रुपये रक्षा व्यय के रूप में बचेंगे जो कि विकास पर खर्च किए जा सकेंगे। इससे सभी सुरक्षित रहेंगे व विकसित होंगे।

**सन 1947 के पश्चात् फेंच के कब्जे से पाण्डिचेरी,पुर्तगीज के कब्जे से गोवा देव- दमन तथा अमेरिका के कब्जें में जाते हुए सिक्किम को मुक्त करवाया है। आज पाकिस्तान में पख्तून, बलूच, सिंधी, बाल्टीस्थानी (गिलगित मिलाकर), कश्मीरी मुजफ्फरावादी व मुहाजिर नाम से इस्लामाबाद (लाहौर) से आजादी के आन्दोलन चल रहे हैं। पाकिस्तान की 60 प्रतिशत से अधिक जमीन तथा 30 प्रतिशत से अधिक जनता पाकिस्तान से ही आजादी चाहती है।**

# विश्व कल्याण हेतु भारत का सनातन संदेश है गीता

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

**श्रुति-स्मृति, वेद-वेदांग, उपनिषद-शास्त्र-पुराण आदि के मन्थन का सारतत्व श्रीमद्भगवद्गीता के 18 अध्यायों के अन्तर्गत 700 श्लोकों में समाहित है। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र के साथ मिलकर गीता भारत की आध्यात्मिक परंपरा के अन्तर्गत वेदान्त की प्रस्थान त्रयी की धारा को पूर्ण करती है। यह सर्वशास्त्रमयी महाग्रंथ है। इसमें गौ स्वरूप में उपनिषदों के महान तत्वज्ञान को ग्वाल पुत्र बने भगवान कृष्ण दोग्धा बनकर दुहते हैं, बछड़े के स्वरूप में अर्जुन जिसका रसपान करते हैं, गीता नामक अमृतरसायन बनकर दूध संसार के और मनुष्यमात्र के कल्याण के लिए भगवान स्वयं उपलब्ध करवाते हैं जिसे कोई भी शुद्ध बुद्धि से श्रद्धापूर्वक पी ले तो उसका कल्याण होकर ही रहता है।**

**आधुनिक विश्व में जो भी श्रीमद्भगवद गीता के सम्पर्क में आया, गीता ने उसके जीवन में महान परिवर्तन पैदा किया। श्रीमती एनी बेसेंट से लेकर सिस्टर निवेदिता और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, डॉ.एपीजे अब्दुल कलाम और मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तक सभी ने गीता के श्लोकों से अपने जीवन की महान संभावनाओं को पंख लगाए हैं। हमारे समय के लिए आनन्द की बात ये है कि अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में संपूर्ण विश्व ने गीता के ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग को जीवन में क्रमशः अपनाने की दिशा में ही तेजी से कदम आगे बढ़ा दिए हैं।**

*लेखक संस्कृति पर्व के समूह सम्पादक और सेन्टेनियल चेयर प्रोफेसर, भारत अध्ययन केंद्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी हैं।*

गीता केवल बहुजन या किसी विशेषजन की बात नहीं करती है। गीता 'सर्वभूतहिते रताः' की भावना के अनुसार सबके कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। देश, धर्म, जाति, वर्ण, लिंग आदि भेदों के परे जाकर गीता प्रत्येक मनुष्य को न केवल मुक्तिपद का अधिकारी घोषित करती है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी भावना, साधना और रूचि के अनुसार ज्ञानमार्ग, भक्ति मार्ग और कर्ममार्ग रूप में ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग का चिरन्तन पथ भी बताती है। इसमें से किसी भी पथ को अपनाकर साधक जीवन्मुक्ति की दशा प्राप्त कर सकता है। आत्मज्ञान से भरपूर मनुष्य जाति का उत्थान कर संपूर्ण संसार को स्वर्गमय स्थान में परिवर्तित करना ही गीता का संदेश है।

मध्यकाल में जब भारत पर भयानक विदेशी आक्रमणों की बाढ़ चढ़ आई तो संत परंपरा ने गीता के संदेश को भक्ति आन्दोलन के जरिए जन-जन तक पहुंचाकर उन्हें अपनी संस्कृति और परंपरा से बांधे रखा। स्वतंत्रता आन्दोलन के समय सभी स्वातंत्र्य नायकों ने, क्रांतिकारियों ने गीता के मंत्रों को हृदय और कंठ में धारण कर ब्रिटिश सत्ता को न सिर्फ चुनौती दी बल्कि हंसते हंसते मृत्यु के फंदे को अमर पथ पर जाने का रास्ता बना लिया।

मनुष्य के सामने जब कहीं घुप अंधेरा मार्ग रोककर खड़ा हो जाता है तब संपूर्ण गीता की बात दूर है, मन और हृदय में बसा हुआ एक-दो श्लोक भी रास्ता खोज निकालने में सहायक हो जाता है। इसीलिए महात्मा गांधी को भी गीता का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहना पड़ा कि-

मुझे भगवद्गीता में एक ऐसी सान्त्वना व शक्ति मिलती है जो मुझे सर्मन ऑन द माउन्ट( बाइबल का एक उपदेश) तक में नहीं मिलती। जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब बिल्कुल एकाकी मुझको प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखाई पड़ती, तब मैं गीता की शरण लेता हूं। इसमें जहां-तहां कोई न कोई श्लोक मुझे ऐसा दिखाई पड़ जाता है कि मैं विषम विपत्तियों में भी तुरन्त मुस्कुराने लगता हूं- और मेरा जीवन बाह्य विपत्तियों से भरा रहा है-और यदि वे मुझपर अपना कोई दृश्यमान, अमिट चिन्ह नहीं छोड़ सकीं, तो इसका सारा श्रेय भगवद्गीता की शिक्षाओं को ही है। (यंग इंडिया-1925, पृ. 1078-79

योगी अरविन्द के जीवन पर भी गीता का अमिट प्रभाव पड़ा। गीता की महत्ता प्रतिपादित करते हुए महर्षि ने यहां तक लिखा कि हर युग के लिए गीता के पास नवीन संदेश है, प्रत्येक सभ्यता के लिए गीता में नया अर्थ है। एल्डस हक्सले ने स्वीकार किया है कि गीता अनमोल है, इसका संदेश केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि पूरी विश्व मानवता के कल्याण के लिए है। अमेरिका के प्रख्यात भौतिक विज्ञानी और परमाणु बम के जनक रॉबर्ट ओपेनहाइमर ने गीता के अध्ययन के लिए 1933 में संस्कृत भाषा सीखी और तब जाकर मूल ग्रंथ का संस्कृत में ही अध्ययन किया। उन्होंने माना कि श्रीमद्भगवद् गीता के श्लोकों ने उनकी पूरी जिन्दगी और सोचने की प्रक्रिया ही आमूलचूल बदल डाली। ट्रिनिटी न्यूक्लियर टेस्ट की भीषणता को देखकर उनके मुख बरबस ही गीता के विश्वरूपदर्शन योग नामक 11वें अध्याय का अत्यंत भावपूर्ण श्लोक निकल पड़ा –

**दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता।**
**यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः।**

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्व रूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो।

कालांतर में ओपनहाइमर ने एक अन्य श्लोक की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया जिसके बारे में उन्होंने आपने साथी वैज्ञानिकों को बताया कि परमाणु विस्फोट की भयावहता देखकर उनके मन में इस श्लोक का अर्थ प्रकट हुआ कि

**कालोअस्मि लोकक्षयकृतप्रवृद्धो।।**

लोकों के विनाश के लिए मृत्यु बनकर आता हूं मैं।

गीता के अक्षर अक्षर और शब्द शब्द के इसी गहन प्रभाव की अनुभूति भारतीय मूल की अमेरिकी एस्ट्रोनॉट सुनीता विलियम्स को भी हुई। स्पेस यात्रा के समय उन्होंने उपनिषद ग्रंथों के साथ गीता की मूल प्रति भी साथ रखी।

आधुनिक विश्व में जो भी श्रीमद्भगवद गीता के सम्पर्क में आया, गीता ने उसके जीवन में महान परिवर्तन पैदा किया। श्रीमती एनी बेसेंट से लेकर सिस्टर निवेदिता और पूर्व राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, डॉ.एपीजे अब्दुल कलाम और मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी तक सभी ने गीता के श्लोकों से अपने जीवन की महान संभावनाओं को पंख लगाए हैं। हमारे समय के लिए आनन्द की बात ये है कि अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में संपूर्ण विश्व ने गीता के ज्ञान-भक्ति और कर्मयोग को जीवन में क्रमशः अपनाने की दिशा में ही तेजी से कदम आगे बढ़ा दिए हैं। संपूर्ण मानवता को प्रीतिपूर्वक परस्पर जोड़ने, उसे दुख-कष्ट-वेदना से मुक्तकर आध्यात्मिक मार्ग पर लाकर खड़ा करने और शांति, अहिंसा के द्वारा सर्वे भवन्तु सुखिनः की दिशा में ले जाने के लिए श्रीमद् भगवद्गीता को संपूर्ण विश्व की शिक्षा व्यवस्था से जोड़ना आज के समय की बड़ी मांग है। विश्वास है कि वर्तमान पीढ़ी इस स्वप्न को भी साकार करने की दिशा में अवश्य उपाय में संलग्न होगी।

# नैसर्गिक सांस्कृतिक संघ है भारतीय उपमहाद्वीप

संजय तिवारी

**नेपाली साहित्य के क्षेत्र में प्रथम महाकाव्य रामायण के रचनाकार भानुभक्त का उदय सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा गाँव अथवा कस्बा नहीं है जहाँ उनकी रामायण की पहुँच नहीं हो। भानुभक्त कृत रामायण वस्तुतः नेपाल का 'राम चरित मानस' है। भानुभक्त का जन्म पश्चिमी नेपाल में चुँदी-व्याँसी क्षेत्र के रम्घा ग्राम में 29 आसढ़ संवत 1871 तदनुसार 1814ई. में हुआ था। संवत् 1910 तदनुसार 1853ई. में उनकी रामायण पूरी हो गयी थी,2 किंतु एक अन्य स्रोत के अनुसार युद्धकांड और उत्तर कांड की रचना 1855ई. में हुई थी।**

*लेखक भारत संस्कृति न्यास के अध्यक्ष और संस्कृति पर्व के संस्थापक संपादक हैं।*

भारतीय उपमहाद्वीप नाम पश्चिम ने दिया है। वस्तुतः भारतीय भूखण्ड से खण्डित होकर जितने भी नये देश बने हैं उनको किसी भी प्रकार से भारतीयता से मुक्त नहीं किया जा सकता। समय के प्रवाह और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों ने ये बंटवारे वैसे ही किये हैं जैसे आजकल भारत में परिवारों का विखण्डन शुरू गया है। संयुक्त परिवार और एकल परिवार नाम के शब्द और संकल्पनाओं के साथ समाज खुद को आगे बढ़ता हुआ बता रहा है। संयुक्त और एकल होने के लाभ और हानि के विवेचक अपने अपने ढंग से परिभाषाएं देते रहते हैं। इस विखण्डन को भारत भूभाग के संदर्भ में देखा जाए तो इसमें मानव पक्ष से ज्यादा राजनीतिक पक्ष ही उभर कर सामने आता है। यह अलग बात है कि भारत से स्वयं को अलग कर राष्ट्र बन जाने वाले अधिकांश भूभाग मानवीय रूप से या तो अशांत हैं या निर्धन। नये परिवेश में यह समझने और स्वीकार करने का समय आ चुका है कि जिसे आधुनिक विद्वान भारतीय उपमहाद्वीप कहते हैं, वस्तुतः वह एक ऐसा नैसर्गिक सांस्कृतिक संघ है जिसको अंगीकार किये बिना न शांति संभव है न सम्पन्नता। खासतौर पर वर्तमान भारतवर्ष के पड़ोसी - नेपाल, तिब्बत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान और अन्य ऐसे सभी राष्ट्र वैसे तो सम्प्रभुता सम्पन्न हैं लेकिन इनकी नैसर्गिक सांस्कृतिक एकता को एक संघीय स्वरूप प्रदान करना और उसे सभी को स्वीकार करना अनिवार्य बनता जा रहा है। अयोध्या में भगवान श्रीराम के मन्दिर निर्माण की आधारशिला रखे जाते समय नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री ओली का चीनी षडयंत्र में अयोध्या को नेपाल में बताना और अभी हाल में अफगानिस्तान पर तालिबानी हुकूमत का आना दोनों ही एक अलग प्रकार की चिंता में डालने वाली घटनाएं हैं। ऐसी घटनाओं से यह समूचा प्राचीन भारतीय क्षेत्र प्रभावित है। बांग्लादेश, श्रीलंका, म्यामार, भूटान और ऐसे अन्य सभी पड़ोसियों को अब नये चिंतनधारा में आना ही होगा।

## राम, रामायण और नेपाल

राम के समय कोई अलग नेपाल नही था। आज के नेपाल का अस्तित्व केवल कुछ साल पहले का ही है। उससे पहले यह हिमालयी भूभाग आर्यावर्त का ही हिस्सा था। आज भी नेपाल का प्रथम महाकाव्य रामायण है। यह मैं नही कह रहा। खुद नेपाल का राष्ट्रीय अभिलेखागार अपने सभी दस्तावेजों के साथ चिल्ला चिल्ला कर कह रहा है। राम नेपाल के भी राष्ट्रनायक हैं, दामाद भी और परमपूज्य भी। नेपाल के राष्ट्रीय अभिलेखागार में वाल्मीकि रामायण की दो प्राचीन पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं। इनमें से एक पांडुलिपि के किष्किंधा कांड की पुष्पिका पर तत्कालीन नेपाल नरेश गांगेय देव और लिपिकार तीरमुक्ति निवासी कायस्थ पंडित गोपति का नाम अंकित है। इसकी तिथि सं. 1076 तदनुसार 1019ई. है। दूसरी पांडुलिपि की तिथि नेपाली संवत् 795 तदनुसार 1674-76ई. है।

नेपाल के प्रधानमंत्री ओली के एक वक्तव्य ने अब नेपाल को नए संकट में डाल दिया है। अंग्रेजो से आजाद होने से पूर्व तक नेपाल भारतीय भूभाग का अभिन्न अंग रहा है। यह अलग बात है कि भारत ने कभी उसे अपना राज्य न मान कर अपने रिश्तेदार की तरह सम्बन्ध बनाकर काम किया है। रिश्तेदार भी कोई सामान्य नही बल्कि अत्यंत प्रिय। इतना कि जरुरत पड़ने पर अपनी थाली भी उसके आगे रख दिया। इधर हाल के वर्षों में नेपाल को कुछ हो गया है। शर्मा जी ओली को चीनी रायता भा गया है। उन्हें लगता है कि वे कुछ भी कहते, करते और दिखाते रहेंगे और भारत चुपचाप सहता रहेगा। चीन की कम्युनिष्ट नशीली चाशनी में डूबे ओली को अपना ही इतिहास, भूगोल और साहित्य भूल गया। वह हिमालय में ही अयोध्या बताने लगे। राम नेपाल में पैदा हुए, यह उनका नया इतिहास है।

ओली जी खुद अपने वर्तमान देश का साहित्य और इतिहास नही जानते। वे नेपाल के कितने बड़े हितचिंतक हैं , इसी से पता चल जाता है। मैं बताता हूँ, ओली जी। आपके ही देश का राष्ट्रीय अभिलेखागार लिखता है कि नेपाल में रामकथा का विकास मुख्य रुप से वाल्मिकि तथा अध्यात्म रामायण के आधार पर हुआ है। जिस प्रकार भारत की क्षेत्रीय भाषाओं क साथ राष्ट्रभाषा हिंदी में राम कथा पर आधारित अनेकानेक रचनाएँ है, किंतु उनमें गोस्वामी तुलसी दास विरचित रामचरित मानस का सर्वोच्च स्थान है, उसी प्रकार नेपाली काव्य और गद्य साहित्य में भी बहुत सारी रचनाएँ हैं। 'रामकथा की विदेश-यात्रा' के अंतर्गत उनका विस्तृत अध्ययन एवं विश्लेषण हुआ है।

नेपाली साहित्य में भानुभक्त कृत रामायण को सर्वाधिक

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। नेपाल के लोग इसे ही अपना आदि रामायण मानते हैं। यद्यपि भनुभक्त के पूर्व भी नेपाली राम काव्य परंपरा में गुमनी पंत और रघुनाथ भ का नाम उल्लेखनीय है। रघुनाथ भ कृत रामायण सुंदर कांड की रचना उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। इसका प्रकाशन नेपाली साहित्य सम्मेलन, दार्जिलिंग द्वारा कविराज दीनानाथ सापकोरा की विस्तृत भूमिका के साथ 1932 में हुआ।

नेपाली साहित्य के क्षेत्र में प्रथम महाकाव्य रामायण के रचनाकार भानुभक्त का उदय सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। पूर्व से पश्चिम तक नेपाल का कोई ऐसा गाँव अथवा कस्वा नहीं है जहाँ उनकी रामायण की पहुँच नहीं हो। भानुभक्त कृत रामायण वस्तुतः नेपाल का 'राम चरित मानस' है। भानुभक्त का जन्म पश्चिमी नेपाल में चुँदी-व्याँसी क्षेत्र के रम्घा ग्राम में 29 आसढ़ संवत 1871 तदनुसार 1814ई. में हुआ था। संवत् 1910 तदनुसार 1853ई. में उनकी रामायण पूरी हो गयी थी,2 किंतु एक अन्य स्रोत के अनुसार युद्धकांड और उत्तर कांड की रचना 1855ई. में हुई थी।

भानुभक्त कृत रामायण की कथा अध्यात्म रामायण पर आधारित है। इसमें उसी की तरह सात कांड हैं, बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किंधा, सुंदर, युद्ध और उत्तर।

बालकांड का आरंभ शिव-पार्वती संवाद से हुआ है। तदुपरांत ब्रह्मादि देवताओं द्वारा पृथ्वी का भारहरण के लिए विष्णु की प्रार्थना की गयी है। पुत्रेष्ठियज्ञ के बाद राम जन्म, बाल लीला, विश्वामित्र आगमन, ताड़का वध, अहिल्योद्धार, धनुष यज्ञ और विवाह के साथ परशुराम प्रसंग रुपायित हुआ है।

अयोध्या कांड में नारद आगमन, राज्याभिषेक की तैयारी, कैकेयी कोप, राम वनवास, गंगावतरण, राम का भारद्वाज और वाल्मीकि से मिलन, सुमंत की अयोध्या वापसी, दशरथ का स्वर्गवास, भरत आगमन, दशरथ की अंत्येष्ठि, भरत काचित्रकूट गमन, गुह और भारद्वाज से भरत की भेंट, राम-भरत मिलन, भरत की अयोध्या वापसी औ राम के अत्रि आश्रम गमन का वर्णन हुआ है।

अरण्यकांड में विराध वध, शरभंग, सुतीक्ष्ण और आगस्तमय से राम की भेंट, पंचवटी निवास, शूपंणखा-विरुपकरण, मारीच वध, सीता हरण और राम विलाप के साथ जटायु, कबंध और शबरी उद्धार की कथा है।

किष्किंधा कांड में सुग्रीव मिलन, वालि वध, तारा विलाप, सुग्रीव अभिषेक, क्रिया योग का उपदेश, राम वियोग, लक्ष्मण का किष्किंधा गमन, सीतानवेषण और स्वयंप्रभा आख्यान के उपरांत संपाति की आत्मकथा का उद्घाटन हुआ है।

सुंदर कांड में पवन पुत्र का लंका गमन, रावण-सीता संवाद, सीता से हनुमानकी भेंट, अशोक वाटिका विध्वंस, ब्रह्मपाश, हनुमान-रावण संवाद, लंका दहन, हनुमान से सीता का पुनर्मिलन और हनुमान की वापसी की चर्चा हुई है।

युद्ध कांड में वानरी सेना के साथ राम का लंका प्रयाण, विभीषण शरणागति, सेतुबंध, रावण-शुक संवाद, लक्ष्मण-मूर्च्छा, कालनेमिकपट, लक्ष्मणोद्धार, कुंभकर्ण एवं मेघनाद वध, रावण-यज्ञ विध्वंस, राम-रावण संग्राम, रावण वध, विभीषण का राज्याभिषेक, अग्नि परीक्षा, राम का अयोध्या प्रत्यागमन, भरत मिलन और राम राज्याभिषेक का चित्रण हुआ है।

उत्तरकांड में रावण, वालि एवं सुग्रीव का पूर्व चरित, राम-राज्य, सीता वनवास, राम गीता, लवण वध, अश्वमेघ यज्ञ, सीता का पृथ्वी प्रवेश और राम द्वारा लक्ष्मण के परित्याग के उपरांत उनके महाप्रस्थान के बाद कथा की समाप्ति हुई है।

कुछ समीक्षकों का कहना है कि भानुभक्त कृत रामायण अध्यात्म रामायण का अनुवाद है, किंतु यह यथार्थ नहीं है। तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भानुभक्त कृत रामायण में कुल 1317 पद हैं, जबकि अध्यात्म रामायण में 4268 श्लोक हैं। अध्यात्म रामायण के आरंभ में मंगल श्लोक के बाद उसके धार्मिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है, किंतु भानुभक्त कृत रामायण सीधे शिव-पार्वती संवाद से शुरु हो जाती है। इस रचना में वे आदि से अंत तक अध्यात्म रामायण की कथा का अनुसरण करते प्रतीत होते हैं, किंतु उनके वर्णन में संक्षिप्तता है और यह उनकी अपनी भाषा-शैली में लिखी गयी है। यही उनकी सफलता और लोकप्रियता का आधार है।

भानुभक्त कृत ```रामायण``` में अध्यात्म रामायण के उत्तर कांड में वर्णित 'राम गीता' को सम्मिलित नहीं किया गया था। भानुभक्त के मित्र पं. धर्मदत्त ग्यावली को इसकी कमी खटक रही थी। विडंबना यह थी कि उस समय भानुभक्त मृत्यु शय्या पर पड़े थे। वे स्वयं लिख भी नहीं सकते थे। मित्र के अनुरोधपर महाकवि द्वार अभिव्यक्त 'राम गीता' को उनके पुत्र रामकंठ ने लिपिबद्ध किया। इस प्रकार नेपाली भाषा की यह महान रचना पूरी हुई जो कालांतर में संपूर्ण नेपाल वासियों का कंठहार बन गयी।

## ऋषि 'ने' और गुफा 'पाल' से उपजा नेपाल

हमारे हिमालयी पड़ोसी के वर्तमान गृहस्वामी को अपने ही इतिहास के बारे में कुछ नही मालूम। उन्हें न तो नेपाल का ने पता है और न ही पाल। नेपाल' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में विद्वानों की विभिन्न धारणाएँ हैं। 'नेपाल' शब्द की उत्त्पत्ति के बारे में ठोस प्रमाण कुछ नहीं है, लेकिन एक प्रसिद्ध विश्वास अनुसार यह शब्द 'ने' ऋषि तथा पाल (गुफा) मिलकर बना है।

माना जाता है कि एक समय नेपाल की राजधानी काठमांडू

'ने' ऋषि का तपस्या स्थल था। 'ने' मुनि द्वारा पालित होने के कारण इस भूखंड का नाम नेपाल पड़ा, ऐसा कहा जाता है। तिब्बती भाषा में 'ने' का अर्थ 'मध्य' और 'पा' का अर्थ 'देश' होता है। तिब्बती लोग 'नेपाल' को 'नेपा' ही कहते हैं। 'नेपाल' और 'नेवार' शब्द की समानता के आधार पर डॉ॰ ग्रियर्सन और यंग ने एक ही मूल शब्द से दोनों की व्युत्पत्ति होने का अनुमान किया है। टर्नर ने नेपाल, नेवार, अथवा नेवार, नेपाल दोनों स्थिति को स्वीकार किया है। 'नेपाल' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में किया है। उस काल में बिहार में जो मागधी भाषा प्रचलित थी उसमें 'र' का उच्चारण नहीं होता था। सम्राट् अशोक के शिलालेखों में 'राजा' के स्थान पर 'लाजा' शब्द व्यवहार हुआ है। अतः नेपार, नेबार, नेवार इस प्रकार विकास हुआ होगा।

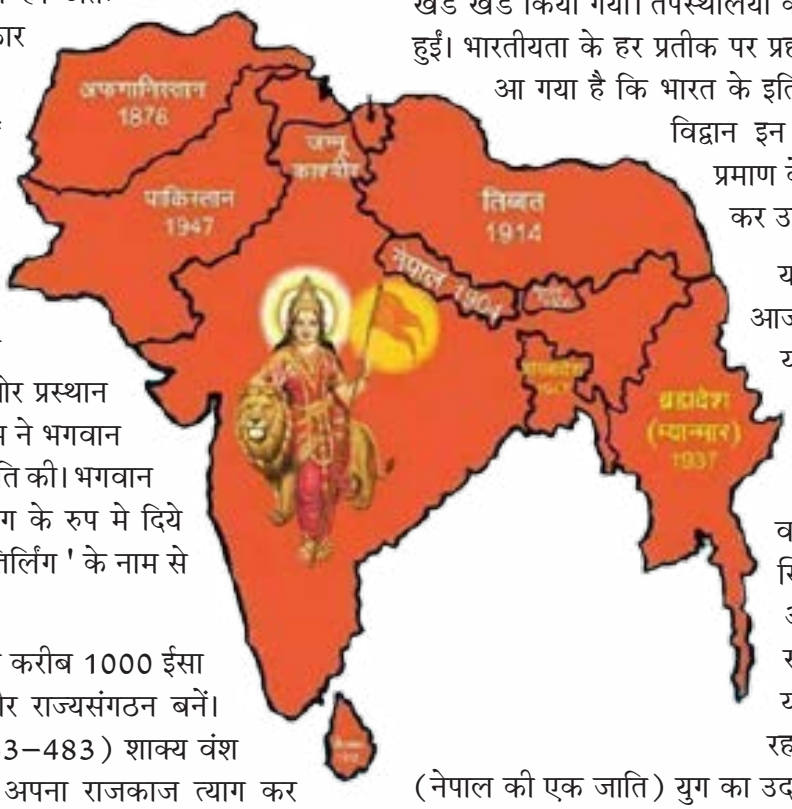


इतिहासकार बताते हैं कि सम्भवतः तिब्बती-बर्माई मूल के लोग नेपाल में 2,500 वर्ष पहले आ चुके थे।5500 ईसा पुर्व महाभारत काल मे जब कुंती पुत्र पॉच पाडंव स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर रहे थे तभी पांडु पुत्र भीम ने भगवान महादेव को दर्शन देने हेतु स्तुति की। भगवान शिव ने उन्हे दर्शन एक लिंग के रुप मे दिये जो आज 'पशुपतिनाथ ज्योतिर्लिंग ' के नाम से जाना जाता है ।

इतिहासकार बताते हैं कि करीब 1000 ईसा पूर्व में छोटे-छोटे राज्य और राज्यसंगठन बनें। सिद्धार्थ गौतम (ईसापूर्व 563–483) शाक्य वंश के राजकुमार थे, जिन्होंने अपना राजकाज त्याग कर तपस्वी का जीवन निर्वाह किया और वह बुद्ध बन गए।

नेपाल का प्राचीन काल सभ्यता, संस्कृति और शौर्य की दृष्टि से बड़ा गौरवपूर्ण रहा है। प्राचीन काल में नेपाल राज्य की बागडोर क्रमशः गुप्तवंश किरात वंशी, सोमवंशी, लिच्छवि, सूर्यवंशी राजाओं के हाथों में रही है। किरातवंशी राजा स्थुंको, सोमवंशी लिच्छवी, राजा मानदेव, राजा अंशुवर्मा के राज्यकाल बड़े गौरवपूर्ण रहे हैं। कला, शिक्षा, वैभव और राजनीति के दृष्टिकोण से लिच्छवि काल 'स्वर्णयुग' रहा है। जन साधारण संस्कृत भाषा में लिखपढ़ और बोल सकते थे। राजा स्वयं विद्वान् और संस्कृत भाषा के मर्मज्ञ होते थे। 'पैगोडा' शैली की वास्तुकला बड़ी उन्नत दशा में थी और यह कला सुदूर महाचीन तक फैली हुई थी। मूर्तिकला भी समृद्ध अवस्था में थी। धार्मिक सहिष्णुता के कारण् हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म समान रूप से विकसित हो रहे थे। काफी वजनदार स्वर्णमुद्राएँ व्यवहार में प्रचलित थीं। विदेशों से व्यापार करने के लिए व्यापारियों का अपना संगठन था। वैदेशिक संबंध की सुदृढ़ता वैवाहिक संबंध के आधार पर कायम थी।

## चंद्रगुप्त मौर्य के भारत का महत्वपूर्ण राज्य

अंग्रेजों से पहले तक यह भारत ही रहा है। सनातन संस्कृति का प्राण। ऋषियों की तपस्थली। केवल नेपाल ही नही , चीन का बहुत बड़ा हिमालयी क्षेत्र भी। मानसरोवर और कैलाश तक। भारत भूमि का विखंडन किस प्रकार किया गया। कैसे सनातन शरीर के टुकड़े किये गए। कैसे इन महान मानवीय संस्कृति को खंड खंड किया गया। तपस्थलियों को खत्म करने की कोशिशें हुईं। भारतीयता के हर प्रतीक पर प्रहार किया गया। अब समय आ गया है कि भारत के इतिहासकार और पुरातत्व के विद्वान इन विषयों को सत्यता और प्रमाण के साथ विश्व के सामने ले कर उपस्थित हों।

यह प्रामाणिक सत्य है कि आज से ढाई हजार साल पूर्व यह क्षेत्र महान चंद्रगुप्त और अशोक के साम्राज्य का हिस्सा रहा है। उसके बाद लगभग एक हजार वर्ष तक इसकी राजनैतिक स्थिति उसी रूप में रही। आठवी शताब्दी में लिच्छवि साम्राज्य की स्थापना में भी यह वैशाली के अधीन ही रहा।सन् 879 से यहां नेवार (नेपाल की एक जाति) युग का उदय हुआ, फिर भी इन लोगों का नियन्त्रण इस क्षेत्र में कितना बना था, इसका आकलन कर पाना मुश्किल है। 11वी शताब्दी के उत्तरार्ध में दक्षिण भारत से आए चालुक्य साम्राज्य का प्रभाव नेपाल के दक्षिणी भूभाग में दिखा। चालुक्यों के प्रभाव में आकर उस समय राजाओं ने बौद्धधर्म छोडकर सनातन धर्म का समर्थन किया और नेपाल में धार्मिक परिवर्तन होने लगा ।

सन् 880 में लिच्छवि राज्य की समाप्ति पर नुवाकोटे ठकुरी राजवंश का अभ्युदय हुआ। इस समय नेपाल राज्य की अवनति प्रारंभ हो गई थी। केंद्रीय शासन शिथिल पड़ गया था। फलतः नेपाल अनेक राजनीतिक इकाइयों में विभाजित हो गया। हिमालय के मध्य कछार में मल्लों का गणतंत्र राज्य कायम था। लिच्छवि शासन की समाप्ति पर मल्ल राजा सिर उठाने लगे थे। सन् 1350 ई. में बंगाल के शासक शमशुद्दीन इलियास ने

नेपाल उपत्यका पर बड़ा जबरदस्त आक्रमण किया। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक व्यवस्था _अस्तव्यस्त_ हो गयी। सन् 1480 ई. में अंतिम वैश राजा अर्जुन देव अथवा अर्जुन मल्ल देव को उनके मंत्रियों ने पदच्युत करके स्थितिमल्ल नामक राजपूत को राजसिंहासन पर बैठाया। इस समय तक केंद्रीय राज्य पूर्ण रूप से छिन्न-भिन्न होकर काठमाडों, गोरखा, तनहुँ, लमजुङ, मकबानपुर आदि लगभग तीस रियासतों में विभाजित हो गया था।

तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में संस्कृत शब्द मल्ल कुलनाम वाले राजवंश का उदय होने लगा। 200 वर्ष में इन राजाओं ने शक्ति एकजुट की। 14वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में देश का बहुत ज्यादा भाग एकीकृत राज्य के अधीन में आ गया। लेकिन यह एकीकरण कम समय तक ही टिक सका। 1482 में यह राज्य तीन भाग में विभाजित हो गया- कान्तिपुर, ललितपुर और भक्तपुर जिसके बीच मे शताब्दियों तक मेल नहीं हो सका। राजा स्थिति मल्ल अस्तव्यस्त आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में पूर्ण रूप से समर्थ हुए। राजा पक्षमल्ल ने केंद्रीय शासन को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया, किंतु उनके निधन पर पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों ने राज्य को आपस में बाँटकर पुनः राजनीतिक इकाइयाँ खड़ी कीं। मध्यकालीन नेपाल साहित्य, संगीत और कला की दृष्टि से उन्नत होने पर भी राजनीतिक दृष्टि से अवनति की ओर ही बढ़ा। जनजीवन अशांत था। यूरोपीय साम्राज्यवादियों की कुदृष्टि भारत के पश्चात् नेपाल पर भी पड़ गई थी। नेपाल के विरुद्ध किनलोक का सैनिक अभियान और उपत्यका में ईसाई पादरियों की चहल पहल इस तथ्य के प्रमाण हैं।

## युद्ध और राजनीति ने सनातन के केंद्र को बांटा

लगातर युद्धों और स्वार्थ की राजनीति ने सनातन के केंद्र को ही भारत के भूगोल से अलग कर दिया। नेपाल , जो आज है वह जिस यात्रा से होकर गुजरा है, यह समझना आवश्यक है। मौर्य और मल्ल साम्राज्य से निकल कर लिच्छवि की अधीनता से वह किस तरह बाहर निकल कर पादरियों और इस्लामिक सम्राज्यवाद का शिकार हुआ, यह जानना भी दिलचस्प है।

इतिहास कहता है कि राजा स्थिति मल्ल अस्तव्यस्त आर्थिक, धार्मिक तथा सामाजिक व्यवस्था को सुदृढ़ करने में पूर्ण रूप से समर्थ हुए। राजा पक्षमल्ल ने केंद्रीय शासन को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया, किंतु उनके निधन पर पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों ने राज्य को आपस में बाँटकर पुनः राजनीतिक इकाइयाँ खड़ी कीं। मध्यकालीन नेपाल साहित्य, संगीत और कला की दृष्टि से उन्नत होने पर भी राजनीतिक दृष्टि से अवनति की ओर ही बढ़ा। जनजीवन अशांत था। यूरोपीय साम्राज्यवादियों की कुदृष्टि भारत के पश्चात् नेपाल पर भी पड़ गई थी। नेपाल के विरुद्ध किनलोक का सैनिक अभियान और उपत्यका में ईसाई पादरियों की चहल पहल नेपाल नेपाल की सनातन पहचान को बहुत खंडित किया। भारतीय क्षेत्र में इस्लाम के दखल ने इसे और भी मोड़ा। सोने की चिड़िया पर आक्रमण करने वालो को पहाड़ कठिन लगने लगे तो उन्होंने भारतीय राज्यो के आसान शिकार करने शुरू कर दिए। उनके लिए ठंडा मौसम और पहाड़ी राज्य मुफीद नही लगे।

इधर गोरखा राज्य इन दिनों काफी सबल हो चुका था। नेपाल की छोटी छोटी राजनीतिक इकाइयों पर और नेपाली जनजीवन पर गोरखा राज्य का प्रभाव छा गया था। न्यायमूर्ति राजा रामशाह के न्याय की चर्चा नेपाल भर में फैल गयी थी। राजा पृथ्वीपति शाह के राज्यकाल में बंगाल के नवाब ने गुर्गिन खाँ के नेतृत्व में नेपाल पर आक्रमण करने के लिए पचास साठ हजार फौज भेजी थी। नवाब की सेना मकवानपुर के तराई क्षेत्र में पड़ाव डाले हुई थी। मकबानपुर ने गोरखा राज्य से सहायता की याचना की। गोरखा के कुछ जवानों ने नवाब की सेना को गाजर मूली की तरह काट डाला। बचे हुए सैनिक अपनी जान बचाकर भाग निकले।

उपर्युक्त इन दो कारणो से गोरखा राज्य नेपाली जनजीवन के सुखद भविष्य का आशाकेंद्र हो गया था। जनजीवन की इस

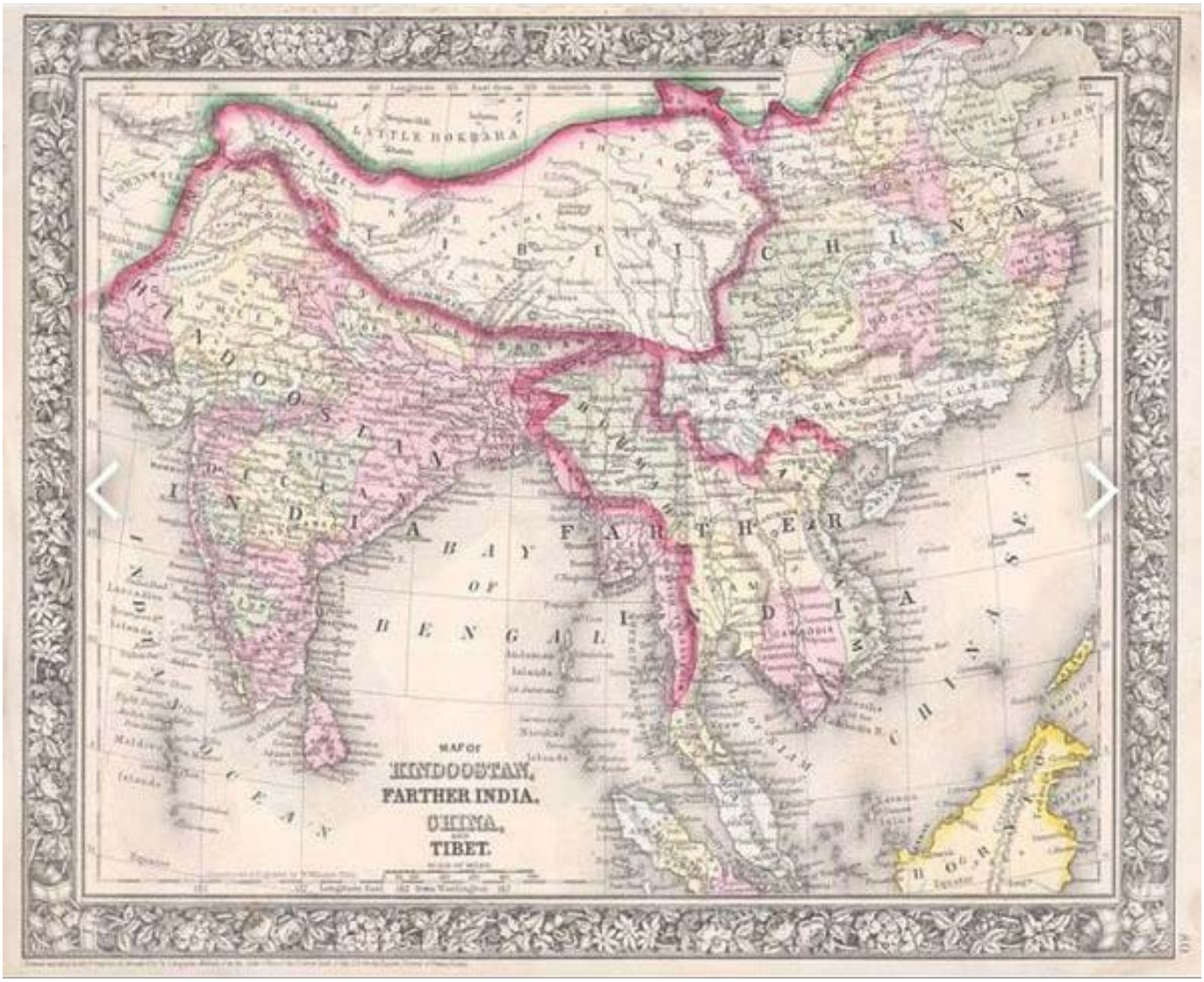


आकांक्षा को नेपाल राष्ट्र के जनक महाराजाधिराज पृथ्वीनारायण शाह ने समझा और नेपाल के एकीकरण के लिए अभियान प्रारंभ किया। जिस प्रकार यूरोप में सार्डिनिया राज्य ने इटली का और प्रशा राज्य ने जर्मनी का एकीकरण किया, उसी प्रकार गोरखा राज्य ने पृथ्वीनारायण शाह के नेतृत्व में नेपाल का एकीकरण किया।

मध्यकालीन नेपाल के अंतिम चरण में अर्थात् राष्ट्र के जनक पृथ्वीनारायण शाह के उदय होने से पूर्व विदेशी लोग नेपाल पर दाँत गड़ाने लगे थे। नेपाल उपत्यका में पादरी लोग ईसाई धर्म का प्रचार करने लगे थे। मल्ल राजा आपसी फूट-वैमनस्य, झगड़ा, युद्ध आदि बातों में निरंतर व्यस्त थे। नेपाल उपत्यका के बाहर के राज्य भी आपस में लड़-झगड़कर अपनी जन-धन-शक्ति को क्षीण कर रहे थे। राजाओं ने आपसी झगड़े, मल्ल राजाओं द्वारा देव-मंदिर की संपत्ति का व्यक्तिगत उपभोग, राजा भास्कर मल्ल द्वारा हिंदू भावना के विरुद्ध एक मुसलमान को प्रधान मंत्री बनाने का कार्य आदि मध्यकालीन राजनीतिक स्थिति को धूमिल बनाते हैं । नेपाल की सार्वभौम स्वतंत्रता को अधर में डाल देते है। जिस प्रकार शमशुद्दीन इलियास के आक्रमण के पश्चात् राजा स्थितिमल्ल ऐतिहासिक आवश्यकता के रूप में दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार साम्राज्यवादियों से नेपाल का बचाने वाले के रूप में पृथ्वीनारायण शाह ऐतिहासिक आवश्यकता स्वरूप दिखलाई पड़ते हैं।

गोरखों ने 1790 में तिब्बत पर आक्रमण किया किंतु यह आक्रमण नेपाल को महँगा पड़ा। चीन ने 1791में तिब्बत का पक्ष लेकर अपनी सेनाएँ नेपाल में प्रविष्ट करा दीं और 1792 में गोरखों को संधि करने पर विवश किया। इसी वर्ष ग्रेट ब्रिटेन और नेपाल में द्वितीय वाणिज्य संधि संपन्न हुई और नेपाल में एक अंग्रेज कूटनीतिज्ञ की नियुक्ति की व्यवस्था हो गई। भारत नेपाल सीमा विवाद के समय 1814 में ब्रिटेन ने नेपाल के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया। मार्च 1816 में नेपाल ने अपनी कुछ भूमि अंग्रेजों को दे दी और काठमांडू में अंग्रेजी रेजीडेंसी की स्थापना हो गई। 1857 के भारतीय 'सिपाही विद्रोह' में नेपालके तत्कालीन प्रधान

मंत्री जंगबहादुर ने अंग्रेजी सेना की सहायता के लिए 12000 सैनिक भेजे। धर्मविरोधी, जातिविरोधी तथा राष्ट्रविरोधी कार्यों ने सच्चे नेपाली के मन में सुदृढ़ नेपाल राष्ट्र खड़ा करने की भावना को जन्म दिया। नेपाल की छिन्न-भिन्न राजनीतिक इकाइयों को एक सूत्र में बाँधकर नेपाल राष्ट्र खड़ा करने के लिए वहाँ की राजनीतिक इकाइयों का एकीकरण हुआ।

1765 मे, गोरखाके शाहवंशी राजा पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाल के छोटे छोटे बाइसे व चोबिसे राज्यके ऊपर चढाँइ करतेहुए एकिकृत किया । इस काल में कई बड़ी लड़ाइयां हुईं। इन युद्धों के पश्वात उन्होंने तीन वर्ष बाद कान्तीपुर, पाटन व भादगाँउ के राजाओं को हराया और अपने राज्य का नाम गोरखा से नेपाल में परिवर्तित किया। कान्तिपुर विजयके लिये तीन बार युद्ध करना पडा । महान् सेनानायक कालू पाण्डे भी इसी युद्ध में शहीद हो गए। पृथ्वीनारायण शाह ने कूटनीति अपनाकर उपत्यका के बाहर के देशों से भयंकर युद्ध किया। उन्होंने पूरी नाकाबंदी कर के कीर्तिपुर और कांतिपुर पर विजय पा ली। वास्तव में, उस समय इन्द्रजात्रा पर्व में कान्तिपुर की सभी जनता फसल के देवता भगवान इन्द्र की पूजा और महोत्सव (जात्रा) मना रहे थे, जब पृथ्वी नारायण शाह ने अपनी सेना लेकर धावा बोला और सिंहासन कब्जा कर लिया। इस घटना को आधुनिक नेपाल का जन्म भी कहते है।

## तिब्बत भुगत रहा है चीनी सहयोग का खामियाजा

सनातन संस्कृति के प्राण तत्व हिमालय में हैं। हिमालय की एक एक गुफा, एक एक दर्रे और हर चोटी में सनातन की शक्ति निहित है। इसलिए हिमालय के बिना न सनातन की कल्पना संभव है और न ही भारत की। नेपाल और तिब्बत के रूप में दो अलग राष्ट्रीय भूगोल किस प्रकार स्थापित हुए , यह बहुत ही रोचक कहानी है। इतना ही रोचक है भगवान शंकराचार्य का पशुपति पूजन भी। इस विषय को क्रम से आगे ले कर आएंगे। अभी बात हो रही है नेपाल के इतिहास के उन पन्नों की जिनके कारण आज का भूगोल नेपाल को स्थापित करता है। इस श्रृंखला में इतिहास के उस पृष्ठ को रेखांकित करने का प्रयास है जिसमे इस बात के प्रमाण हैं कि चीन से एक बार सहायता लेकर तिब्बत को कितना कुछ खोना पड़ा है।

यहां एक तथ्य से अवगत करा देना उचित लगता है। नेपाल के इतिहास की इस श्रृंखला को लेकर बहुत लोगो के मन मे कुछ संशय हो सकता है। उन्हें अवगत कराना आवश्यक है कि स्थापित इतिहासकारो, दार्शनिकों और आधुनिक इतिहास के विद्वानों के अनुमोदन से ही इस श्रृंखला का प्रकाशन किया जा रहा है। अब आगे की बात करते हैं। तिब्बत से हिमाली (हिमालयी) मार्ग के नियन्त्रण के लिए हुआ विवाद और उसके पश्चात जो युद्ध हुआ उसमे नेपाली सैनिक मानसरोवर से आगे तक बढ चुक़े थे लेकिन तिब्बत की सहायता के लिए चीन के आने के बाद नेपाल पीछे हट गया। यह प्रमाणित है कि सनातन संस्कृति के लिए चीन सदियों से एक गंभीर खतरा रहा है। आधुनिक नेपाल की नींव नेपाल राष्ट्र के एकीकरण से और साम्राज्यवाद के विरोध से निर्मित हुई है।

इससे पहले कि आधुनिक नेपाल के इतिहास में चलें, बहुत जरूरी है नेपाल और तिब्बत के बीच हुए युद्धों को जान लेना। यही सबसे बड़ा प्रमाण है दक्षिण एशिया में चीन की साम्राज्यवादी नीति का। बिना इसे जाने न नेपाल को समझा जा सकता है और न ही प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के लदाख में दिए गए उस भाषण को, जिसमे उन्होंने ललकार कर कहा था कि अब विस्तारवाद नही विकासवाद का युग है। प्रधान मंत्री नरेंद्र मोदी की यह ललकार सदियों की चीनी विस्तारवादी राजनीति को बड़ी चुनौती है। चीन के सभी कारनामो से हमे कोई खास मतलब नही , लेकिन उससे तो है जो हमे सीधे प्रभावित करता है।इसके लिए सबसे पहले तिब्बत के भूगोल और थोड़े से इतिहास को भी समझना पड़ेगा। मध्यएशिया की उच्च पर्वत श्रेणियों, कुनलुन एवं हिमालय के मध्य स्थित 16000 फुट की ऊँचाई पर स्थित तिब्बत का ऐतिहासिक वृतांत लगभग 7वीं शताब्दी से मिलता है। 8वीं शताब्दी से ही यहाँ बौद्ध धर्म का प्रचार प्रांरभ हुआ। 1013 ई0 में नेपाल से धर्मपाल तथा अन्य बौद्ध विद्वान् तिब्बत गए। 1042 ई0 में दीपंकर श्रीज्ञान अतिशा और श्री विवेक बिलैया तिब्बत पहुँचे और बौद्ध धर्म का प्रचार किया। शाक्यवंशियों का शासनकाल 1207 ई0 में प्रांरभ हुआ। मंगोलों का अंत 1720 ई0 में चीन के माँछु प्रशासन द्वारा हुआ। तत्कालीन साम्राज्यवादी अंग्रेंजों ने, जो दक्षिण पूर्व एशिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त करते जा रहे थे, यहाँ भी अपनी सत्ता स्थापित करनी चाही, पर 1788-1792 ई0 के गुरखों के युद्ध के कारण उनके पैर यहाँ नहीं जम सके। परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी तक तिब्बत ने अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थिर रखी यद्यपि इसी बीच लद्दाख़ पर कश्मीर के शासक ने तथा सिक्किम पर अंग्रेंजों ने आधिपत्य जमा लिया। अंग्रेंजों ने अपनी व्यापारिक चौकियों की स्थापना के लिये कई असफल प्रयत्न किया। तिब्बत को दक्षिण में नेपाल से भी कई बार युद्ध करना पड़ा और नेपाल ने इसको हराया। नेपाल और तिब्बत की सन्धि के मुताबिक तिब्बत ने हर साल नेपाल को 5000 नेपाली रुपये हरज़ाना भरना पड़ा। इससे आजित होकर नेपाल से युद्ध करने के लिये चीन से सहायता माँगी। चीन के सहायता से उसने नेपाल से छुटकारा तो पाया लेकिन इसके बाद 1906-7 ई0 में तिब्बत पर चीन ने अपना अधिकार बनाया और याटुंग ग्याड्से एवं गरटोक में अपनी चौकियाँ स्थापित की। 1912 ई0 में चीन से मांछु शासन अंत होने के साथ तिब्बत ने अपने को पुनः स्वतंत्र राष्ट्र घोषित कर दिया। सन् 1913-14

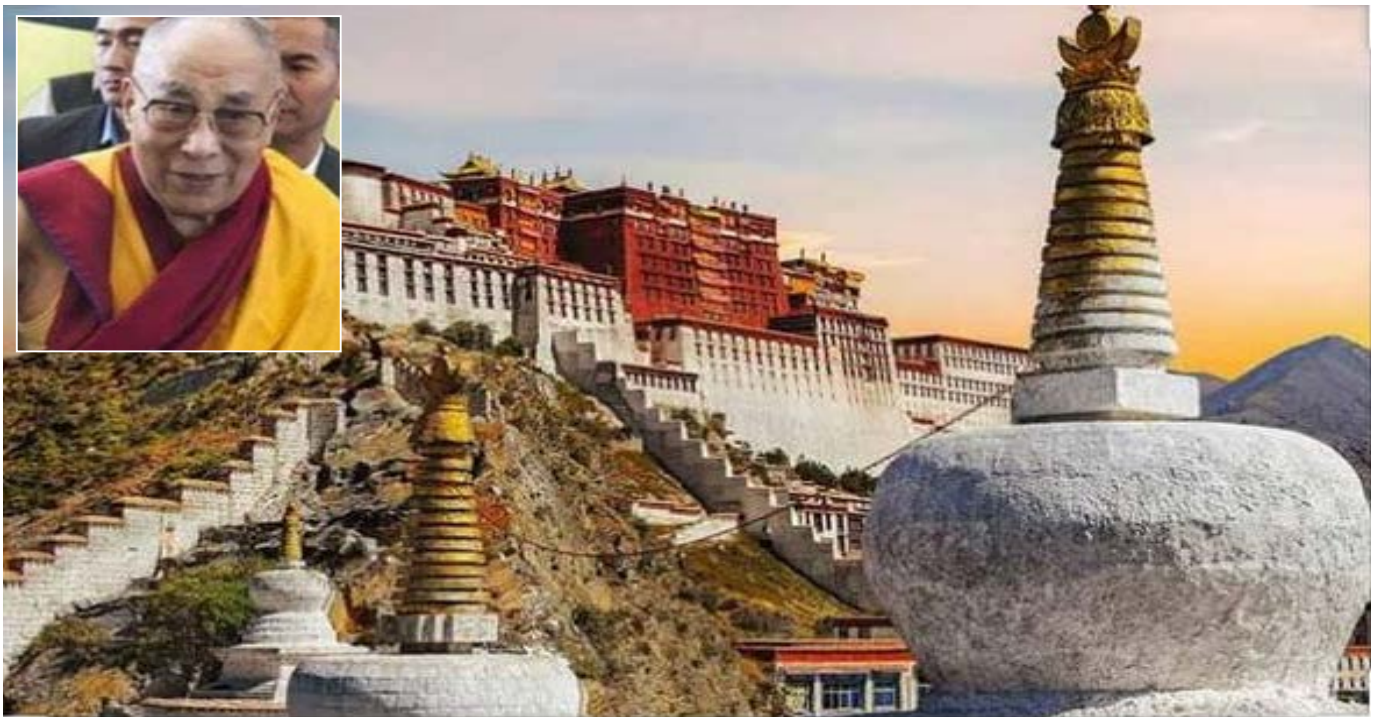

में चीन, भारत एवं तिब्बत के प्रतिनिधियों की बैठक शिमला में हुई जिसमें इस विशाल पठारी राज्य को भी दो भागों में विभाजित कर दिया गयाः

**(1)** पूर्वी भाग जिसमें वर्तमान चीन के चिंगहई एवं सिचुआन प्रांत हैं। इसे 'अंतर्वर्ती तिब्बत' (Inner Tibet) कहा गया।

**(2)** पश्चिमी भाग जो बौद्ध धर्मानुयायी शासक लामा के हाथ में रहा। इसे 'बाह्य तिब्बत' (Outer Tibet) कहा गया।

सन् 1933 ई0 में 13वें दलाई लामा की मृत्यु के बाद से बाह्य तिब्बत भी धीरे-धीरे चीनी घेरे में आने लगा। चीनी भूमि पर लालित-पालित 14 वें दलाई लामा ने 1940 ई0 में शासन भार सँभाला। 1950 ई0 में जब ये सार्वभौम सत्ता में आए तो पंछेण लामा के चुनाव में दोनों देशों में शक्तिप्रदर्शन की नौबत तक आ गई एवं चीन को आक्रमण करने का बहाना मिल गया। 1951की संधि के अनुसार यह साम्यवादी चीन के प्रशासन में एक स्वतंत्र राज्य घोषित कर दिया गया। इसी समय से भूमिसुधार कानून एवं दलाई लामा के अधिकारों में हस्तक्षेप एवं कटौती होने के कारण असंतोष की आग सुलगने लगी जो क्रमशः 1956 एवं 1959 ई0 में जोरों से भड़क उठी। परन्तु बलप्रयोग द्वारा चीन ने इसे दबा दिया। अत्याचारों, हत्याओं आदि से किसी प्रकार बचकर दलाई लामा नेपाल पहुँच सके। उसके बाद से वह लगातार भारत में ही हैं। उनके बारे में सभी को मालूम है। अभी हाल ही में उनका 85 वाँ जन्मदिन भी बीता है।

## तिब्बत के साथ बहुत छल हुआ

यह श्रृंखला केवल एक भूगोल का इतिहास भर नही है। वस्तुतः यह उस संस्कृति का इतिहास है जिसे भूगोल ने भारत बना दिया है। यह संस्कृति किसी खास भूगोल में नही बसती। यही पृथ्वी पर मनुष्य की संस्कृति है। इस पर आक्रमण का इतिहास इसके अभ्युदय काल से ही है। आज भी बांग्लादेश में जो हुआ है उसको आखिर इतिहास किस रूप में दर्ज करेगा। दुख है कि बंगला देश की अमानवीय घटना, बुद्ध पर हुए आक्रमण पर सभी लिबरल ताकतें प्रतिक्रियाहीन पड़ी हैं।

बहरहाल, चर्चा नेपाल के रास्ते तिब्बत पर केंद्रित करता हूँ। कई पाठकों के सुझाव आये कि तिब्बत के इतिहास और उसके नेपाल, चीन संबंधों की जानकारी नई पीढ़ी को बहुत कम है। ऐसे में तिब्बत को लेकर थोड़ा विस्तार दिया जाय ताकि बातें ठीक से समझ मे आ सकें। इन्ही सुझावों के अनुसार इस कड़ी में विशेष तथ्य प्रस्तुत करने की कोशिश है।

नेपाल आज जिस रूप में दिखता है, यह पहले ऐसा नही था। तथ्यों को समझने के लिए बात उस दौर से शुरू करते हैं जब गोरखाओं की शक्ति बढ़ी। शक्ति पाते ही 1786 में गोरखाओं ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई की परिस्थितियो का निर्माण गोरखाओं द्वारा नेपाल पर पूर्ण नियंत्रण के कुछ वर्ष पूर्व हुआ। नेपाल ने तिब्बत को आपूर्ति किये जाने वाले चांदी के सिक्कों में तांबा मिलाना शुरू किया। 1751में सातवें दलाई लामा ने काठमांडू, पाटन और भक्तगांव के जागीरों पर शासन करने वाले तीन नेवारी राजाओं को पत्र लिखकर इस पर विरोध जताया। जब गोरखाओं के मुखिया पृथ्वी नारायण ने नेवारी शासकों को उखाड़ फेंका तो उन्हें भी इस बात से अवगत कराया गया। केवल 26 वर्षीय आठवें दलाई लामा ने मांचू शासक चिएन लंग से अस्थायी

सैन्य सहायता भेजने का अनुरोध किया। 1792 में तिब्बत में प्रवेश करने वाली मांचू सेना तिब्बतियों के लिए हानिकारक ही साबित हुई और इस सेना ने पुनः मांचू रेजिडेंट की ताकत बढ़ाने का प्रयास किया। इसके बाद चिएन लंग ने पीकिंग से एक स्वर्णकलश भेजा और यह घोषणा की भविष्य में दलाई लामा और अन्य महत्वपूर्ण लामाओं के उत्तराधिकारियों के चयन के लिए इस कलश में सभी उम्मीदवारों का नाम डाला जाएगा और मांचू रेजीडेंट के सामने यादृच्छिक (रैंडम) रूप से कलश से एक नाम निकाला जाएगा। तिब्बतियों ने इस साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का पालन नहीं किया और तेरहवें दलाई लामा (जिनके चयन के बारे में मांचुओ से सलाह नहीं ली गयी थी) ने सार्वजनिक रूप से इस प्रथा को समाप्त कर दिया। इस दौरान तिब्बत पर कई बार चढ़ाई की गयी और ल्हासा का मांचू रेजिडेंट घृणित षडयंत्रों और तिब्बती मामलों में दखलंदाजी करने में लगा रहा। लेकिन तिब्बत ने अपनी संप्रभुता कभी नहीं खोई। तिब्बत के लोगों ने दलाई लामा के नेतृत्व वाले केंद्रीय तिब्बत सरकार को एकमात्र वैधानिक सरकार के रूप में स्वीकार किया।

तिब्बत की संप्रभुता उस समय भी स्पष्ट हुई जब चीन को बताये बिना ही 1856 में तिब्बत व नेपाल के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। तिब्बत के आंतरिक मामलों के लिहाज से देखा जाए तो ल्हासा में तिब्बत के केंद्रीय सरकार की संप्रभुता उन आंतरिक संघषोर् के दौरान अधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुई जो 19वीं सदी के मय में शुरू हुए। इनमें एक तरफ न्यारांग के मुखिया थे तो दूसरी तरफ देंगे के नरेश और होरपा के राजकुमार। न्यारांग के मुखिया द्वारा अपने पड़ोसियों पर चढ़ाई से यह समस्या उत्पन्न हुई थी, इसलिए तिब्बती सरकार ने सेना भेजकर न्यारांग के मुखिया को परास्त किया और उसके स्थान पर एक तिब्बती राज्यपाल नियुक्त किया, जिसे देंगे और होरपा जागीरों के देखभाल की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी। 1876 में 13वें दलाई लामा थुपटेन ग्यात्सो ने 19 वर्ष की अवस्था में रीजेंट चोक्यी ग्यालत्सेन कुंडेलिंग से इस राज्य की जिम्मेदारी अपने हाथ में ली। वह एक विशिष्ट व्यक्ति थे और उन्होंने तिब्बत को विशिष्ट व्यक्ति थे और उन्होंने तिब्बत को अंतरराष्ट्रीय मामलों में न्यायसंगत प्रभुसत्ता पुनः हासिल करने में सहायता की।

उस समय ब्रिटिश सरकार का चीन के साथ बहुत गहरा व लाभदायक संबंध बन गया था चीन ने ब्रिटेन को यह समझाने में सफलता हासिल कर ली थी कि तिब्बत पर उसका अधिराज है। इसलिए 13 सितंबर, 1876 को चीन-ब्रिटेन चेफो समझौते पर हस्ताक्षर किया गया जिसके द्वारा ब्रिटेन को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह तिब्बत के अन्वेषण के लिए एक अभियान भेजे। लेकिन यह अभियान नहीं भेजा जा सका क्योकि तिब्बतियों ने उन्हें इसकी अनुमति इस आधार पर नहीं दी कि तिब्बत के लोग चीन के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार के दो और समझौते 24 जुलाई, 1886 का पीकिंग समझौता और 17 मार्च, 1890 का कलकत्ता समझौता भी तिब्बतियो द्वारा खारिज कर दिया गया। तिब्बती सरकार ने ब्रिटिश लोगों से किसी भी तरह का संबंध रखना स्वीकार नहीं किया, जो कि उनके क्षेत्र के बारे में चीन से बातचीत कर रहे थे। यह लगभग 1900-1901में रूस व तिब्बत के बीच हुए नये समझौते के अनुरूप ही था। इसके बाद दलाई लामा और रूसी जार के बीच पत्रों व उपहारों का आदान-प्रदान किया गया। इससे तिब्बत के मामले में रूसी हस्तक्षेप के बारे में ब्रिटिश लोगों का संदेह और गहरा हो गया। एशिया में रूस की ताकत बढ़ती जा रही थी जिसके कारण ब्रिटिश सरकार यह सोचने लगी कि उनके हितों पर खतरा मंडरा रहा है। कर्नल यंग हस्बेंड के नेतृत्व में एक ब्रिटिश अभियान दल ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और 03 अगस्त, 1904 को ल्हासा में प्रवेश किया। 7 सिंतबर, 1904 को तिब्बत और ब्रिटेन के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। ब्रिटिश चढ़ाई के दौरान तिब्बत ने एक स्वतंत्र देश के रूप में मामले को संभाला। तिब्बत पर ब्रिटेन की चढ़ाई का पीकिंग ने कुछ खास विरोध नहीं किया।

जब ब्रिटिश लोगों ने तिब्बत पर चढ़ाई की तो 13वें दलाई लामा मंगोलिया चले गये। चीन पर शासन करने वाले मांचुओं ने तिब्बत के मामले में दखल देने का अंतिम प्रयास किया और कुख्यात चाओ अरफेंग के नेतृत्व में एक अभियान भेजा। जब दलाई लामा आमदो प्रांत के कुमबुम मठ में थे तभी उन्हें दो संदेश प्राप्त हुए। एक ल्हासा से, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वह अति शीघ्र ल्हासा लौट आएं क्योंकि लोग उनकी सुरक्षा को लेकर चिंतित थे और चाओ अरफेंग की सैन्य टुकड़ी का विरोध नहीं कर सकते थे। दूसरा संदेश पीकिंग से आया था जिसमें उनसे चीन की राजधानी की यात्रा करने का अनुराध किया गया था। दलाई लामा ने यह सोचकर पीकिंग जाने का निर्णय लिया कि वह चीनी शासक को इस बात के लिाए राजी कर लेंगे कि वह तिब्बत पर सैन्य आक्रमण रोके और वहां तिब्बत पर सैन्य आक्रमण रोके और वहां से अपनी सेनाएं हटा ले।

लेकिन जब अंतिम रूप से 1909 में दलाई लामा ल्हासा लौटे तो उन्होंने देखा कि पीकिंग से प्राप्त सभी आश्वासनों के विपरीत चाओ अरफेंग की सैन्य टुकड़ी ने वहां अपने पांव जमा चुके थे। 1910 के वार्षिक मोनलम उत्सव के दौरान जनरल चुंग यिंग के नेतृत्व में लगभग 2000 मांचू व चीनी सैनिको ने ल्हासा में प्रवेश किया और उन्होंने वहां नरसंहार, बलात्कार, हत्या और अत्यधिक विनाच्च की घटनाओं को अंजाम दिया। एक बार पुनः दलाई लामा को ल्हासा छोड़ना पड़ा। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में शासन करने के लिए एक रीजेंट की नियुक्ति कर दी और यह सोचकर दक्षिणी शहर ड्रोमो की ओर चल पड़े कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वह ब्रिटिश भारत में चले जाएंगे।

ल्हासा की घटनाओं और चीनी सैन्य टुकड़ी के पीछे लगे होने के कारण उन्हें एक बार पुनः अपना देश छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। भारत में दलाई लामा और उनके मंत्रियों ने ब्रिटिश सरकार से तिब्बत की सहायता करने की मांग की। जबकि मांचू सैन्य दस्ते ने तिब्बत सरकार को उखाड़ने और तिब्बत को चीन के प्रांतो के अनुसार विभाजित करने का प्रयास किया, ठीक वैसा ही जैसा कि लगभग आधी शताब्दी बाद साम्यवादी चीन ने किया।

जनवरी 1913 में मंगोलिया के उर्गा नामक स्थान पर तिब्बत व मंगोलिया के बीच एक द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। उक्त समझौते में दोनो देशों ने अपने को स्वतंत्र और चीन से अलग घोषित किया। जनवरी, 1913 में भारत से लौटने के बाद 13वें दलाई लामा ने जल-बैल (वाटर-ऑक्स) वर्ष के पहले महीने के आठवें दिन (मार्च, 1913 ) तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता का एक औपचारिक घोषणापत्र जारी किया। तेरहवें दलाई लामा ने अपने शासन काल के दौरान उथल-पुथल के बावजूद अंतरराष्ट्रीय संबंधों की शुरुआत की, आधुनिक डाक व तार सेवाओं की शुरुआत की और तिब्बत को आधुनिक बनाने के प्रयास किये। 17 दिसंबर 1933 को उनका देहांत हो गया। उन्हें श्रद्धांजलि प्रदान करने के लिए एक चीनी शिष्टमंडल ल्हासा पहुंचा, लेकिन वास्तव में वे चीन-तिब्बत सीमा के मद्दे को सुलझाने के लिए आये थे। मुख्य प्रतिनिधि के जाने के बाद एक अन्य चीनी प्रतिनिधि ने चर्चा लगातार जारी रखी। चीनी प्रतिनिधि को उसी आधार पर ल्हासा में रहने की अनुमति प्रदान की गयी जिस आधार पर नेपाली और भारतीय प्रतिनिधि वहां रहते थे। लेकिन 1949 में चीनी प्रतिनिधि को तिब्बत से निकाल दिया गया।

सितम्बर 1949 में साम्यवादी चीन ने बिना किसी कारण के पूर्वी तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और पूर्वी तिब्बत के राज्यपाल के मुख्यालय चामदो पर अधिकार कर लिया। चीन के इस आक्रमण के विरोध में 11नवंबर, 1950 को तिब्बत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में आवाज उठायी। हालांकि अल सल्वाडोर ने इस प्रश्न को उठाया था लेकिन संयुक्त राष्ट्र महासभा की संचालन समिति ने इस मुद्दे को टाल दिया। तिब्बत के समक्ष आ चुके महान संकट को देखते हुए 17 नवंबर, 1950 को परम पावन चौदहवें दलाई लामा ने राष्ट्राध्यक्ष के रूप में पूर्ण आध्यात्मिक व लौकिक सत्ता ग्रहण की, जबकि उस समय वह मात्र छह वर्ष के थे। पीकिंग के दौरे पर गये एक तिब्बती प्रतिनिधि मंडल से जबरदस्ती एक समझौते पर हस्ताक्षर करवाया गया जिसे तथाकथित रूप से तिब्बत के शांतिपूर्ण आजादी के उपाय पर 17 बिंदुओं वाला समझौता' कहा गया। जबकि यह प्रतिनिधिमंडल चीनी हमले के बारे में बातचीत करने के लिए पीकिंग गया था। इस समझौते के लिए तिब्बत के नकली आधिकारिक मुहर का प्रयोग किया गया और तिब्बत में और सैन्य कार्रवाई की धमकी दी गयी।

इसके बाद तिब्बती लोगों के जबरदस्त प्रतिरोध की परवाह न करते हुए चीन ने तिब्बत को अपना एक उपनिवेश बनाने की योजना को लागू करने के लिए उक्त समझौते के दस्तावेज का उपयोग किया। 9 सितम्बर, 1951को हजारों चीनी सैनिकों ने ल्हासा में मार्च किया। तिब्बत पर जबरन अधिग्रहण के बाद योजनाबद्ध रूप से यहां के मठों का विनाश किया गया, धर्म का दमन किया गया, लोगों की राजनीतिक स्वतंत्रता छीन ली गयी, बड़े पैमाने पर लोगों को गिरफ्तार और कैद किया गया तथा निर्दोष पुरूषों, महिलाओं और बच्चों का कत्ले-आम किया गया। ल्हासा पर चीनी कब्जे के विरोध में 10 मार्च, 1959 को तिब्बती लोगों ने राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध शुरू किया। चीनियों ने इसका ऐसा निर्दयतापूर्ण प्रतिकार किया जैसा कि तिब्बत के लोगों ने कभी नहीं देखा था। हजारों पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को सरेआम चौराहों पर मौत के घाट उतार दिया गया और बहुत से तिब्बतियों को कैद कर दिया गया या निर्वासित कर दिया गया। भिक्षु और भिक्षुणियां चीनी प्रतिशोध के मुख्य निशाने थे। मठों और मंदिरों पर गोले बरसाये गये। 17 मार्च, 1959 को दलाई लामा ने ल्हासा छोड़ दिया और अपना पीछा कर रहे चीनियों से बचते हुए राजनीतिक शरण लेने के लिए भारत पहुँच गये। उनके साथ निर्वासित तिब्बतियों का एक भारी जनसमूह था। इतिहास में कभी भी इस प्रकार की परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई थी कि इतने तिब्बतियों को अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी हो। इस समय पूरी दुनिया में तीन लाख से अधिक तिब्बती शरणार्थी हैं। परम पावन दलाई लामा भारत मे धर्मशाला में अभी भी रहते है। अब वह तिब्बत की निर्वासित सरकार के मुखिया नही हैं। अब वह तिब्बत के आध्यात्मिक गुरु के रूप में हैं।

## सुगौली संधि का सार समझना जरूरी

भारत का सम्बोधन केवल भारत के भूगोल से नही है। भारत के वर्तमान भूगोल से भी महत्वपूर्ण है सांस्कृतिक भारत। इसी लिए इस श्रृंखला को भारत का अभिन्न अंग लिखने की जरूरत पड़ी। अभी जब इसमे सबसे अभिन्न नेपाल की बात चल रही है तो यह चर्चा सुगौली की सार जाने बगैर पूरी नही हो सकती। इससे पूर्व की सुगौली की महत्वपूर्ण संधि का विवेचन किया जाय, एक तथ्य पर ध्यान देने की आवश्यकता है। हमारी विश्व परिवार की चेतना अर्थात वसुधैव कुटुम्बकम की संस्कृति को सदैव ध्यान में रखना होगा। जिस प्रकार से एक व्यक्ति अपनी संतति की स्वतंत्रता और उसकी भावनाओं का हमेशा सम्मान करता है , उसी प्रकार अपनी पितृ संस्कृति से उत्पन नए राष्ट्रों के लिए भी पितृ सत्ता को स्पेस देनी चाहिए। जिस प्रकार संतान की वंश बेल बढ़ने के साथ ही पितृकुल उसे उसके अनुसार फलने फूलने का पर्याप्त अवसर देता है, वही रीति भारत की संतति स्वरूप निर्मित नए राष्ट्रों के साथ भी निभाना होगा।

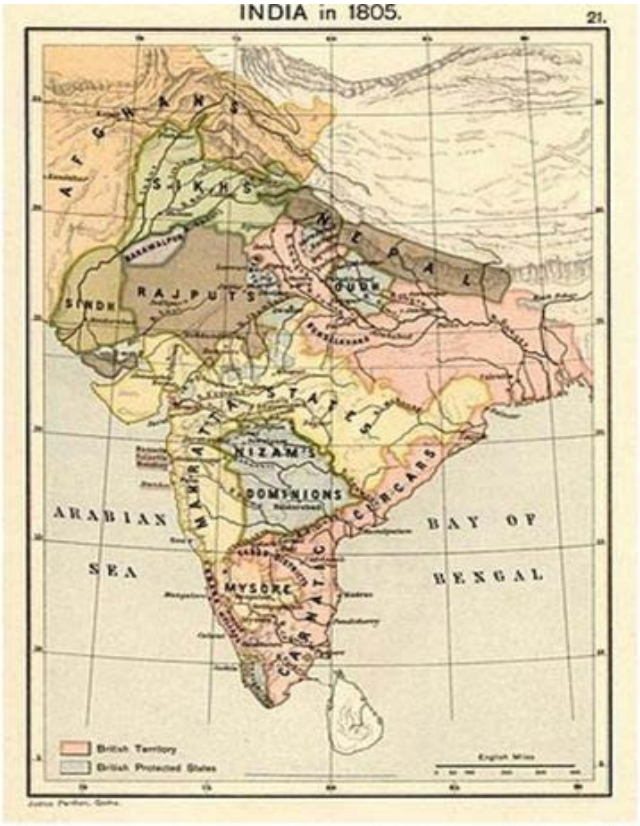


1805 का यह नक्शा नेपाल के उस विस्तार दर्शाता है, जो भारतीय रियासतों को परास्त कर प्राप्त हुआ था। इसके परिणामस्वरूप नेपाल की पश्चिमी सीमा कांगड़ा के निकट सतलुज नदी तक पहुंच गयी थी। सुगौली संधि के कारण यह भाग भारत को वापस मिले।

1795 में ब्रिटिश भारत और नेपाल। आज भी यही सीमायें हैं।

आज की श्रृंखला में सुगौली की चर्चा इसलिए आवश्यक है क्योंकि वर्तमान नेपाल का अस्तित्व इसी संधि से निर्मित हुआ। पहले समझें कि यह संधि है क्या। दरअसल सुगौली संधि, ईस्ट इंडिया कंपनी और नेपाल के राजा के बीच हुई एक संधि है, जिसे 1814-16 के दौरान हुये ब्रिटिश-नेपाली युद्ध के बाद अस्तित्व में लाया गया था। इस संधि पर 2 दिसम्बर 1815 को हस्ताक्षर किये गये और 4 मार्च 1816 का इसका अनुमोदन किया गया।

नेपाल की ओर से इस पर राज गुरु गजराज मिश्र (जिनके सहायक चंद्र शेखर उपाध्याय थे) और कंपनी ओर से लेफ्टिनेंट कर्नल पेरिस ब्रेडशॉ ने हस्ताक्षर किये थे। इस संधि के अनुसार नेपाल के कुछ हिस्सों को ब्रिटिश भारत में शामिल करने, काठमांडू में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि की नियुक्ति और ब्रिटेन की सैन्य सेवा में गोरखाओं को भर्ती करने की अनुमति दी गयी थी, साथ ही इसके द्वारा नेपाल ने अपनी किसी भी सेवा में किसी अमेरिकी या यूरोपीय कर्मचारी को नियुक्त करने का अधिकार भी खो दिया। (पहले कई फ्रांसीसी कमांडरों को नेपाली सेना को प्रशिक्षित करने के लिए तैनात किया गया था)। संधि के तहत, नेपाल ने अपने नियंत्रण वाले भूभाग का लगभग एक तिहाई हिस्सा गंवा दिया जिसमे नेपाल के राजा द्वारा पिछले 25 साल में जीते गये क्षेत्र जैसे कि पूर्व में सिक्किम, पश्चिम में कुमाऊं और गढ़वाल राजशाही और दक्षिण में तराई का अधिकतर क्षेत्र शामिल था। तराई भूमि का कुछ हिस्सा 1816 में ही नेपाल को लौटा दिया गया। 1860 में तराई भूमि का एक बड़ा हिस्सा नेपाल को 1857 के भारतीय विद्रोह को दबाने में ब्रिटिशों की सहायता करने की एवज में पुनः लौटाया गया।

काठमांडू में तैनात ब्रिटिश प्रतिनिधि मल्ल युग के बाद नेपाल में रहने पहला पश्चिमी व्यक्ति था। (यह ध्यान देने योग्य है कि 18 वीं सदी के मध्य में गोरखाओं ने नेपाल पर विजय प्राप्ति के बाद बहुत से ईसाई धर्मप्रचारकों को नेपाल से बाहर निकाल दिया था)। नेपाल में ब्रिटिशों के पहले प्रतिनिधि, एडवर्ड गार्डनर को काठमांडू के उत्तरी हिस्से में तैनात किया गया था और आज यह स्थान लाज़िम्पाट कहलाता है और यहां ब्रिटिश और भारतीय दूतावास स्थित हैं। दिसम्बर 1923 में सुगौली संधि को अधिक्रमित कर 'सतत शांति और मैत्री की संधि', में प्रोन्नत किया गया और ब्रिटिश निवासी के दर्जे को प्रतिनिधि से बढ़ाकर दूत का कर दिया गया।

1950 में भारत (अब स्वतंत्र) और नेपाल ने एक नयी संधि पर दो स्वतंत्र देशों के रूप में हस्ताक्षर किए गए जिसका उद्देश्य दोनों देशों के बीच संबंधों को एक नए सिरे से स्थापित करना था।

1805 में नेपाल की पश्चिमी सीमा कांगड़ा के निकट सतलुज नदी तक पहुंच गयी थी। सुगौली संधि के कारण यह भाग भारत को वापस मिले। दो साल लंबे चले ब्रिटिश- नेपाली युद्ध को खत्म करने के लिए 1816 में, ईस्ट इंडिया कंपनी और नेपाल की गोरखा राजशाही ने इस संधि पर हस्ताक्षर किए थे। इस संधि के तहत, मिथिला क्षेत्र का एक हिस्सा भारत से अलग होकर नेपाल के अधिकार क्षेत्र में चला गया। इस भाग को नेपाल में, पूर्वी तराई या मिथिला कहा जाता है।सुगौली संधि के अस्तित्व में आने तक, पूर्व में दार्जिलिंग और तिस्ता, दक्षिण-पश्चिम में नैनीताल और पश्चिम में कुमाऊं राजशाही, गढ़वाल राजशाही और बाशहर जैसे क्षेत्र नेपाल के अधीन आते थे। इन क्षेत्रों पर नेपाल ने लगभग 25 वर्षों के दौरान विजय प्राप्त की थी, जिन्हें संधि के बाद भारत को वापस लौटाया गया।

## सुगौली संधि की शर्तें

ब्रिटिश-नेपाली युद्ध के बाद, नेपाल सरकार और ईस्ट इंडिया कंपनी के बीच शांति और मैत्री की एक संधि पर हस्ताक्षर किये गये। 2 दिसम्बर 1815 को इस संधि पर नेपाल सरकार की ओर से राज गुरु गजराज मिश्रा जिनके सहायक चंद्र शेखर उपाध्याय थे और कंपनी की ओर से लेफ्टिनेंट कर्नल पेरिस ब्रेडशॉ द्वारा हस्ताक्षर किये गये। 4 मार्च 1816 को चंद्र शेखर उपाध्याय और जनरल डेविड ऑक्टरलोनी द्वारा मकवानपुर में संधि की हस्ताक्षरित प्रतियों का आदान प्रदान किया गया। संधि की शर्तें इस प्रकार थीं -

**1.** ईस्ट इंडिया कंपनी और नेपाल के राजा के बीच सदैव शांति और मित्रता रहेगी।

**2.** नेपाल के राजा उन सभी भूमि दावों का परित्याग कर देंगे जो युद्ध से पहले दोनो राष्ट्रों के मध्य विवाद का विषय थे और उन भूमियों की संप्रभुता पर कंपनी के अधिकार को स्वीकार करेंगे।

**3.** नेपाल के राजा शाश्वत रूप से निम्न उल्लिखित सभी प्रदेशों को ईस्ट इंडिया कंपनी को सौंप देंगे -

**(क)** काली और राप्ती नदियों के बीच का सम्पूर्ण तराई क्षेत्र।

**(ख)** बुटवाल को छोडकर राप्ती और गंडकी के बीच का सम्पूर्ण तराई क्षेत्र।

**(ग)** गंडकी और कोशी के बीच का सम्पूर्ण तराई क्षेत्र जिस पर ईस्ट इंडिया कंपनी द्वारा अधिकार स्थापित किया गया है।

**(घ)** मेची और तीस्ता नदियों के बीच का सम्पूर्ण तराई क्षेत्र।

**(च)** मेची नदी के पूर्व के भीतर प्रदेशों का सम्पूर्ण पहाड़ी क्षेत्र। साथ ही पूर्वोक्त क्षेत्र गोरखा सैनिकों द्वारा इस तिथि से चालीस दिन के भीतर खाली किया जाएगा।

**4.** नेपाल के उन भरदारों और प्रमुखों, जिनके हित पूर्वगामी अनुच्छेद (क्रमांक 3) के अनुसार उक्त भूमि हस्तांतरण द्वारा प्रभावित होते हैं, की क्षतिपूर्ति के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी, 2 लाख रुपये की कुल राशि पेंशन प्रतिवर्ष के रूप में देने को तैयार है जिसका निर्णय नेपाल के राजा द्वारा लिया जा सकता है।

**5.** नेपाल के राजा, उनके वारिस और उत्तराधिकारी काली नदी के पश्चिम में स्थित सभी देशों पर अपने दावों का परित्याग करेंगे और उन देशों या उनके निवासियों से संबंधित किसी मामले में स्वयं को सम्मिलित नहीं करेंगे।

**6.** नेपाल के राजा, सिक्किम के राजा को उनके द्वारा शासित प्रदेशों के कब्जे के संबंध में कभी परेशान करने या सताने की किसी भी गतिविधि में संलग्न नहीं होंगे। यदि नेपाल और सिक्किम के बीच कोई विवाद होता है तो उसे ईस्ट इंडिया कंपनी की मध्यस्थता के लिए भेजा जाएगा।

**7.** एतद्द्वारा नेपाल के राजा, ब्रिटिश सरकार की सहमति के बिना किसी भी ब्रिटिश, अमेरिकी या यूरोपीय नागरिक को अपनी किसी भी सेवा में ना तो नियुक्त करेंगे ना ही उसकी सेवाओं को बनाये रखेंगे।

**8.** एतद्द्वारा नेपाल और ब्रिटेन (ईस्ट इंडिया कंपनी) के बीच स्थापित शांति और सौहार्द के संबंधों की सुरक्षा और उनमें सुधार के उद्देश्य से, यह सहमति बनती है कि एक का मान्यता

प्राप्त मंत्री, दूसरे की अदालत में रहेगा।

9. इस संधि का अनुमोदन नेपाल के राजा द्वारा इस तारीख से 15 दिनों के भीतर किया जाएगा और उसे लेफ्टिनेंट कर्नल ब्रेडशॉ को सौंपा जाएगा, जो उसे अगले 20 दिनों में या उससे पहले (यदि साध्य हो), गवर्नर जनरल से अनुमोदित करा कर राजा को सुपुर्द करेंगे।

इसके बाद दिसम्बर 1816 में एक उत्तरगामी समझौते पर सहमति बनी जिसके अनुसार नेपाल को मेची नदी के पूर्व और महाकाली नदी के पश्चिम के बीच का तराई क्षेत्र वापस लौटा दिया गया। इस समझौते के फलस्वरूप दो लाख रुपए प्रतिवर्ष की क्षतिपूर्ति राशि के प्रावधान को समाप्त कर दिया गया। एक भूमि सर्वेक्षण के द्वारा दोनों राष्ट्रों के बीच की सीमा को तय करने का प्रस्ताव भी स्वीकार किया गया था।

यह तो तथ्य हैं सुगौली संधि के लेकिन इनमें से एक महत्वपूर्ण दस्तावेज अभी तक उपलब्ध नही हो सका है। इस अति महत्वपूर्ण संधि के अनुच्छेद 9 के अनुसार संधि का अनुमोदन नेपाल के राजा द्वारा होना अनिवार्य था, लेकिन राजा गीर्वान युद्ध बिक्रम शाह द्वारा अनुमोदित संधि का अभिलेख निर्णायक रूप से नहीं मिलता है।

सुगौली संधि की यह वस्तुस्थिति है जो इतिहास की पुस्तकों में भी बताई गई है और भारत नेपाल संबंधों पर कार्य करने वाले विशेषज्ञ भी इसे अनुमोदित करते हैं।

## महत्वपूर्ण है शांति- मैत्री संधि 1950

भारतीय संस्कृति की जब भी बात होगी तो उसमें नेपाल स्वतः शामिल रहेगा ही। न तो विदेह और न ही वैदेही के बिना सनातन इतिहास पूरा होगा। पशुपति नाथ और मानसोवर के बिना भला किस सनातन की व्याख्या संभव है। बातें सिर्फ भावनात्मक नही है, यह रक्त संबंधों की हकीकत है। आज नेपाल का कोई राजनीतिक दल या व्यक्ति चीन से इसलिए अपने संबंध स्थापित करता है क्योंकि चीन से उसको लाभ होने वाला है तो इसका समग्र समर्थन नेपाल कभी नही कर सकता। वर्तमान में ओली जी खुद इसको ठीक से समझ रहे होंगे।

जहां तक औपचारिक राष्ट्रीय संबंधों की बात है तो इसको थोड़ा और पीछे से देखना होगा। करीबी पड़ोसियों के रूप में भारत और नेपाल मैत्री और सहयोग के अद्वितीय संबंध रखते हैं, जिसमें खुली सीमाओं और जनता के बीच रिश्ते और नातेदारी व संस्कृति के संपर्कों का गहरा संबंध है। भारत-नेपाल के बीच शांति और मैत्री की संधि (1950) से, भारत और नेपाल के बीच विशिष्ट संबंधों की शुरुआत को आधार प्राप्त हुआ। इस संधि के प्रावधानों के तहत नेपाली नागरिकों ने भारतीय नागरिकों के समान भारत में सुविधाओं और अवसरों का अभूतपूर्व लाभ उठाया है। वर्तमान में लगभग 70 लाख नेपाली नागरिक भारत में रहते और काम करते हैं।

नेपाल के भीतर रहने वाले भारतीयों की संख्या भी काफी है। राजधानी काठमांडू में अधिकांश व्यवसायी या तो भारतीय हैं या स्थायी नेपाली भी हैं तो भारतीय मूल के हैं। रिश्तेदारियां तो भारत मे सामान्य बात है। भारतीय सीमा से लगे इलाकों में तो लगभग 80 फीसद किसान और व्यवसायी दोनो ही देशो में सामान्य रूप से कामकाज करते है।

जहां तक सरकारों का सवाल है तो भारत और नेपाल के बीच नियमित रूप से उच्च स्तरीय बातचीत का दौर चलता रहता है तथा यात्राएं भी नियमित रूप से होती रहती हैं। नेपाली प्रधानमंत्री श्री सुशील कोइराला 26 मई, 2014 को प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी के शपथ ग्रहण समारोह में भाग लेने भारत आए थे। अगस्त 2014 में प्रधानमंत्री श्री नरेंद्र मोदी ने द्विपक्षीय वार्ता के लिए नेपाल की यात्रा की तथा नवंबर में सार्क शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए नेपाल की यात्रा की , जिसमें दोनों देशों के बीच कई द्विपक्षीय करारों पर हस्ताक्षर किए गया । भारत और नेपाल के पास, भारत-नेपाल संयुक्त आयोग सहित कई द्विपक्षीय संस्थागत संवाद तंत्र हैं जिसकी अध्यक्षता भारत के विदेश मंत्री और नेपाल के विदेश मंत्री करते हैं। जब 25 अप्रैल 2015 को नेपाल में 7.4 तीव्रता का भूकंप आया, तब भारत सरकार ने नेपाल में राष्ट्रीय आपदा प्रतिक्रिया दल और राहत सामग्री सहित विशेष

विमान को नेपाल के बचाव के लिए भेजा। खुद प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की नेपाल यात्रा को दुनिया ने देखा। उनके भावपूर्ण संबोधन और लगाव के बारे में अलग से कुछ भी लिखने की आवश्यकता नही है। भारत सदा से ही खुद को नेपाल का हितैषी मानता है लेकिन नेपाल के संदर्भ में हमेशा ऐसी बात रही है कि उसे यह लगता रहा है कि कहीं भारत उस पर हावी न हो जाए इसलिए चीन से भी संबंध बनाकर रखे जाएं। चीन जिस प्रकार आर्थिक तौर पर मजबूत है, नेपाल को लगता है कि चीन से उसे बहुत कुछ मिल सकता है। नेपाल के प्रधानमंत्री केपी शर्मा ओली इस बात को काफी आगे ले गए है। नेपाल में भी यह दृष्टिकोण आगे बढ़ चुका है कि चीन के साथ संबंधों को प्राथमिकता दी जाए ।

नेपाल का चीन की तरफ झुकना एक तात्कालिक राजनीतिक समीकरण ही लगता है। चीन उसके लिए कब से क्यो इतना खास हुआ इस पर आगे की कड़ी में चर्चा करेंगे। अभी बात करते हैं भारत की वर्तमान सरकार और उसके रुख की। दरअसल भारत के लिए नेपाल की अहमियत इस वजह से भी ज्यादा है कि पीएम मोदी के सत्ता में आने के बाद 'पहले पड़ोस की नीति' के मद्देनजर नेपाल उनके शुरुआती विदेशी दौरों में से एक था। जबकि इससे पहले आखिरी बार वर्ष 1997 में नेपाल के साथ भारत की कोई द्विपक्षीय वार्ता हुई थी। मौजूदा सरकार ने नेपाल सरकार के साथ कई महत्त्वपूर्ण समझौते भी किये हैं। कृषि, रेलवे संबंध और अंतर्देशीय जलमार्ग विकास सहित कई द्विपक्षीय समझौतों पर सहमति बनी है। इनमें बिहार के रक्सौल और काठमांडू के बीच सामरिक रेलवे लिंक का निर्माण किया जाएगा, ताकि लोगों के बीच संपर्क तथा बड़े पैमाने पर माल के आवागमन को सुविधाजनक बनाया जा सके। इसके अलावा मोतिहारी से नेपाल के अमेलखगंज तक दोनों देशों के बीच ऑयल पाइपलाइन बिछाने पर भी हाल ही में सहमति बनी है। नेपाल का दक्षिण क्षेत्र भारत की उत्तरी सीमा से सटा है। भारत और नेपाल के बीच रोटी-बेटी का रिश्ता माना जाता है। बिहार और पूर्वी-उत्तर प्रदेश के साथ नेपाल के मधेसी समुदाय का सांस्कृतिक एवं नृजातीय संबंध रहा है। दोनों देशों की सीमाओं से यातायात पर कभी कोई विशेष प्रतिबंध नहीं रहा। सामाजिक और आर्थिक विनिमय बिना किसी गतिरोध के चलता रहता है। भारत-नेपाल की सीमा खुली हुई है और आवागमन के लिये किसी पासपोर्ट या वीजा की जरूरत नहीं पड़ती है। यह उदाहरण कई मायनों में भारत-नेपाल की नज़दीकी को दर्शाता है।

## कभी तिब्बत के अधीन एक राज्य था चीन

चीन एक समय तिब्बत के अधीन था। बात बहुत से लोगों को अजीब लगेगी। बहुत इसको कल्पना कह सकते हैं। बहुतों के लिए थोड़ी सी उत्सुकता भी होगी। इतिहास का यह ऐसा

सच है जिसको देखने, लिखने और नई पीढ़ी को बताने की जरूरत समझी ही नही गयी। स्वाधीन भारत मे यदि सबसे घिनौना कोई कार्य हुआ तो वह है इतिहास के साथ अनैतिक मिलावट। जब मैं यह श्रृंखला लिख रहा हूँ तो इसकी तैयारी में प्राप्त हो रहे नए नए तथ्य मुझे भी झकझोर कर रख देते हैं। सोचने को विवश होना पड़ता है कि ऐसी गंभीर बेईमानियां क्यों की गई है। नेपाल हो या तिब्बत , ये सभी सांस्कृतिक भारत के अभिन्न अंग हैं। आज भूगोल भले बदला है, संस्कृति और दर्शन वही हैं जो सृष्टि के साथ थे। श्रृंखला की इस कड़ी में बात तिब्बत की । कई लोगों ने तिब्बत को जानने की उत्सुकता जताई है। आइये , देखते है तिब्बत को त्रिपिटक से। बुद्ध शाक्यमुनि के दुनिया में आगमन से पांच सौ वर्ष पहले ( 1063 ईसा पूर्व ) महान शेनराब मीवो नामक एक अर्ध पौराणिक व्यक्तित्व ने शेन जाति के आदि जीववाद में सुधार किया और तिब्बती बॉन धर्म की स्थापना की। नरेश न्यात्री सेनपो से पहले 18 शांगशुग राजाओं ने तिब्बत पर शासन किया था। तिवोर संगे झारगुचेन पहले शांगशुग नरेश थे। शांगशुग सम्राज्य के पतन के बाद 127 ईसापूर्व मे नरेश न्यात्री त्सेनपो के समय यारलुंग और चोंगयास घाटी में बॉड नामक एक राजशाही अस्तित्व में आयी (जो तिब्बत का वर्तमान नाम है)। तिब्बती राजतंत्र का यह वंश एक हजार वर्ष से भी अधिक समय तक 41वें नरेश ठ्रि वूदुम सेन तक विद्यमान रहा, जिन्हें आमतौर पर लांग दार्मा के नाम से जाना जाता है। सांगत्सेन गाम्पो, त्रिसांग देत्सेन और राल्पाचेन इस वंश के सबसे प्रमुख राजाओं में से थे। यह 'तीन महान नरेश' के नाम से प्रसिद्ध हैं। त्रिसांग देत्सेन के शासन के दौरान ( 755- 797 ई ) तिब्बती सम्राज्य अपने चरम पर था और उनकी सेनाओं ने चीन और कई मध्य एशियाई देशो में चढ़ाई की। सन 763 में तिब्बतियों ने तत्कालीन चीन की राजधानी चांग-ऐन (वर्तमान जियान) का घेराव कर लिया। इसके कारण चीनी बादशाह भाग खड़ा हुआ और तिब्बतियों ने वहां एक नये शासक की नियुक्ति की। इस यादगार विजय को ल्हासा में झोल डोरिंग (पत्थर स्तंभ) में दर्च्चाया गया है ताकि भावी पीढ़ियां इसे याद रखे। इसका एक हिस्सा इस प्रकार हैः
नरेश त्रिसांग देत्सेन एक पारंगत व्यक्ति थे, वह काफी गहन विचार-विमश करते थे ओर उन्होने अपने साम्राज्य के लिये जो कुछ किया वह पूरी तरह सफल था। उन्होने चीन के कई जिलो और किलों पर चढ़ाई की और उन पर अधिकार जमाया। चीनी शासक हेडु की वांग और उनके मंत्री भयभीत हो गये। नरेच्च ने प्रतिवर्ष रेशम की 50,000 गांठों के नियमित नजराने की मांग की और चीन नजराना देने को विवश हुआ।' नरेश राल्पाछेन के शासन के दौरान ( 815-836 ) तिब्बती सेनाओं को कई बार विजय मिली और 821- 22 में चीन के साथ एक शांति समझौता संपन्न हुआ। इस समझौते के समझौता संपन्न हुआ। इस समझौते के विवरण वाले शिलालेख तीन स्थानों पर पाये गये है - पहला चांग-ऐन में चीनी बादशाह के महल के दरवाजे पर, दूसरा ल्हासा में जोखांग मंदिर के मुख्य दरवाजे के पहले और तीसरा गुरु मेरू पर्वत पर स्थित तिब्बत -चीन सीमा पर। 842 ई0 में तिब्बत में नरेश राल्पाछेन के भाई 41वें नरेश त्रि वुदुम त्सेन की हत्या के बाद युद्धरत राजकुमारों, लॉर्ड और जनरलों में भयानक सत्ता संघर्ष छिड़ गया और महान तिब्बती साम्राज्य कई छोटे-छोटे राज्यों में बंट गया। 842 से 1247 तक का समय तिब्बत के लिए अंधकार का युग रहा। 1073 में कॉनचोग ग्यालपो ने शाक्य मठ की स्थापना की। शाक्य लामा सत्ता में आए और 1254 से 1350 तक तिब्बत पर 20 शाक्य लामाओं द्वारा शासन किया गया। शाक्य पंडित के नाम से मशहूर साक्यापा कुंगा ग्यालत्सेन ने मंगोल राजकुमार गोदन (खान वंश) का धर्म परिवर्तन कर उसे बौद्ध बनाया और उसके राज्य पर चढ़ाई करने वाली अपनी सेनाओं को हटा लिया। 1358 में यू प्रांत (मध्य तिब्बत) पर नेदांग के राज्यपाल चांगचुब ग्यालत्सेन का अधिकार हो गया जोकागयुद सम्प्रदाय के फामो ड्रगपा शाखा के एक सन्यासी थे। इसके अगले 86 वर्षों तक तिब्बत पर फामों ड्रग्प्पा वंश के ग्यारह लामाओं का शासन रहा। 1434 में पांचवे फामों ड्रुप्पा शासक ड्रकपा गयालत्सेन की मृत्यु के बाद सत्ता रिनपुंग परिवार के हाथ में आ गयी, जिनका ड्रुप्पा ग्यालत्सेन के साथ वैवाहिक संबंध था। 1436 से 1566 तक सत्ता रिनपुंग परिवार के प्रमुखों के हाथ में रही। तिब्बत के महानतम विद्वान जोंखपा लोसांग ड्रगपा ने 1409 में पहले गेलुपा मठ गाडेन की स्थापना की और गेलुग वंश की शुरुआत हुई। 1543 में जन्मे सोनम ग्यातसो एक महान अध्यात्मिक और लौकिक ज्ञान वाले विद्वान के रूप मे उभरे। उन्होंने अल्तान बान को बौद्ध धर्म में दीक्षित कराया और बाद में 1578 में उन्हें दलाई लामा नाम दिया गया जिसका मतलब होता है 'ज्ञान का महासागर'। सोनम ग्यात्सो अपने वंश के तीसरे शासक थे इसलिए उन्हें तीसरा के तीसरे शासक थे इसलिए उन्हें तीसरा दलाई लामा कहा गया। उनके दो पूर्व अवतारों को मरणोपरांत यह सम्मान दिया गया। तिब्बत और मंगोलिया के बीच एक गहरा आध्यात्मिक संबंध विकसित हुआ। 1642 में पांचवें दलाई लामा गवांग लोजांग ग्यात्सो ने तिब्बत पर आध्यात्मिक व लौकिक दोनों दृष्टियों से अधिकार कर लिया। उन्होंने तिब्बती सरकार की वर्तमान शासन प्रणाली की स्थापना की जिसे गांदेन फोड्रांग' कहा जाता है। समूचे तिब्बत के शासक बनने के बाद उन्होंने चीन की ओर रूख किया और चीन से मांग की कि वह उनकी संप्रभुता को मान्यता दे। मिंग बादशाह ने दलाई लामा को एक स्वतंत्र और बराबरी का शासक स्वीकार किया। इस बात के प्रमाण हैं कि वह दलाई लामा से मिलने के लिए अपनी राजधानी से बाहर आए और उन्होंने शहर को घेरने

वाली दीवार के ऊपर से एक ढाल वाले मार्ग का निर्माण किया ताकि दलाई लामा बिना प्रवेश द्वार तक गये सीधे पीकिंग में प्रवेश कर सकें

## दलाई लामा स्वतंत्र शासक के साथ चीन के देवता भी

चीन के शासक ने दलाई लामा को न केवल एक स्वतंत्र शासक के रूप में स्वीकार किया, बल्कि उन्हें पृथ्वी पर एक देवता के रूप में भी माना था। इसके बदले में दलाई लामा ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर मंगोलों को इस बात के लिए राजी किया कि वह चीन पर मिंग शासक का आधिपत्य स्वीकार करे। इसके परिणाम स्वरूप पुरोहित-यजमान संबंध का विकास हुआ जिसने तिब्बत, चीन व मंगोलिया के संबंधों में एक नये वातावरण का निर्माण किया। एक और महत्वपूर्ण घटना थी पांचवे दलाई लामा का यह बयान कि उनके निजी शिक्षकों में से एक, पहले पंचेन लामा की श्रेणी को जारी रखा जाये।

महान पाचवें दलाई लामा के यशस्वी शासनकाल के दौरान षडयंत्र और अस्थिरता का दौर भी आया। 1697 में गद्दी पर बैठाये गये छठे दलाई लामा सांगयांग ग्यात्सो ने राज्य के मामले में रूचि लेने से इंकार किया और वह गलत रास्तों पर चल पड़े। जब छठें दलाई लामा के उत्तराधिकारी कालसांग ग्यात्सो को पूर्वी तिब्बत के लिथांग में खोजा गया, तो मंगोलों और मांचुओं के विभिन्न जनजातियों में उन पर नियंत्रण के लिए संघर्ष छिड़ गया ताकि वह तिब्बत पर अपना प्रभाव जमा सकें और इसमें मांचुओं को सफलता मिली।

1723 में जब मांचू सेना ने अंतिम रूप से ल्हासा को छोड़ा तो उन्होंने दलाई लामा की सेवा के लिए वहां एक रेजिडेंट अथवा अम्बान छोड़ दिया जो वास्तव में मांचुओं निजी हितों की देखभाल के लिए था। यह तिब्बती मामलों में मांचुओं के दखल की शुरूआत थी। मांचुओं ने तिब्बतियों की इच्छा के विरूद्ध तिब्बती रीजेंट के रूप में अपने प्रतिनिधि को रख दिया। कुछ वर्षों के बाद मांचू के प्रतिनिधि की हत्या कर दी गयी और इसके बाद मांचू शासक युंग चेंग ने अपना सैन्य दस्ता भेजा, इस प्रकार पहली बार मांचुओं ने तिब्बत पर चढ़ाई की। तिब्बत पर चढ़ाई की। इसके बाद 1786 में गोरखाओं ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई की परिस्थितियो का निर्माण गोरखाओं द्वारा नेपाल पर पूर्ण नियंत्रण के कुछ वर्ष पूर्व हुआ। नेपाल ने तिब्बत को आपूर्ति किये जाने वाले चांदी के सिक्कों में तांबा मिलाना शुरू किया।

1751में सातवें दलाई लामा ने काठमांडू, पाटन और भक्तगांव के जागीरों पर शासन करने वाले तीन नेवारी राजाओं को पत्र लिखकर इस पर विरोध जताया। जब गोरखाओं के मुखिया पृथ्वी नारायण ने नेवारी शासकों को उखाड़ फेंका तो उन्हें भी इस बात से अवगत कराया गया। 26 वर्षीय आठवें दलाई लामा ने मांचू शासक चिएन लंग से अस्थायी सैन्य सहायता भेजने का अनुरोध किया। 1792 में तिब्बत में प्रवेश करने वाली मांचू सेना तिब्बतियों के लिए हानिकारक ही साबित हुई और इस सेना ने पुनः मांचू रेजिडेंट की ताकत बढ़ाने का प्रयास किया। इसके बाद चिएन लंग ने पीकिंग से एक स्वर्णकलश भेजा और यह घोषणा की भविष्य में दलाई लामा और अन्य महत्वपूर्ण लामाओं के उत्तराधिकारियों के चयन के लिए इस कलश में सभी उम्मीदवारों का नाम डाला जाएगा और मांचू रेजीडेंट के सामने यादृच्छिक (रैंडम) रूप से कलश से एक नाम निकाला जाएगा। तिब्बतियों ने इस साम्राज्यवादी हस्तक्षेप का पालन नहीं किया और तेरहवें दलाई लामा (जिनके चयन के बारे में मांचुओ से सलाह नहीं ली गयी थी) ने सार्वजनिक रूप से इस प्रथा को समाप्त कर दिया।

इस दौरान तिब्बत पर कई बार चढ़ाई की गयी और ल्हासा का मांचू रेजिडेंट घृणित षडयंत्रों और तिब्बती मामलों में दखलंदाजी करने में लगा रहा। लेकिन तिब्बत ने अपनी संप्रभुता कभी नहीं खोई। तिब्बत के लोगों ने दलाई लामा के नेतृत्व वाले केंद्रीय तिब्बत सरकार को एकमात्र वैधानिक सरकार के रूप में स्वीकार किया।

तिब्बत की संप्रभुता उस समय भी स्पष्ट हुई जब चीन को बताये बिना ही 1856 में तिब्बत व नेपाल के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। तिब्बत के आंतरिक मामलों के लिहाज से देखा जाए तो ल्हासा में तिब्बत के केंद्रीय सरकार की संप्रभुता उन आंतरिक संघषोर् के दौरान अधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुई जो 19वीं सदी के मध्य में शुरू हुए। इनमें एक तरफ न्यारांग के मुखिया थे तो दूसरी तरफ देंगे के नरेश और होरपा के राजकुमार। न्यारांग के मुखिया द्वारा अपने पड़ोसियों पर चढ़ाई से यह समस्या उत्पन्न हुई थी, इसलिए तिब्बती सरकार ने सेना भेजकर न्यारांग के मुखिया को परास्त किया और उसके स्थान पर एक तिब्बती राज्यपाल नियुक्त किया, जिसे देंगे और होरपा जागीरों के देखभाल की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी।

1876 में 13वें दलाई लामा थुपटेन ग्यात्सो ने 19 वर्ष की अवस्था में रीजेंट चोक्यी ग्यालत्सेन कुंडेलिंग से इस राज्य की जिम्मेदारी अपने हाथ में ली। वह एक विशिष्ट व्यक्ति थे और उन्होंने तिब्बत को विशिष्ट व्यक्ति थे और उन्होंने तिब्बत को अंतरराष्ट्रीय मामलों में न्यायसंगत प्रभुसत्ता पुनः हासिल करने में सहायता की। उस समय ब्रिटिश सरकार का चीन के साथ बहुत गहरा व लाभदायक संबंध बन गया था चीन ने ब्रिटेन को यह समझाने में सफलता हासिल कर ली थी कि तिब्बत पर उसका अधिराज है। इसलिए 13 सितंबर, 1876 को चीन-ब्रिटेन चेफो समझौते पर हस्ताक्षर किया गया जिसके द्वारा ब्रिटेन को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह तिब्बत के अन्वेषण के लिए एक अभियान भेजे। लेकिन यह अभियान नहीं भेजा जा सका क्योकि

तिब्बत की संप्रभुता उस समय भी स्पष्ट हुई जब चीन को बताये बिना ही 1856 में तिब्बत व नेपाल के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। तिब्बत के आंतरिक मामलों के लिहाज से देखा जाए तो ल्हासा में तिब्बत के केंद्रीय सरकार की संप्रभुता उन आंतरिक संघषोर् के दौरान अधिक स्पष्ट रूप से प्रदर्शित हुई जो 19वीं सदी के मध्य में शुरू हुए। इनमें एक तरफ न्यारांग के मुखिया थे तो दूसरी तरफ दंगे के नरेश और होरपा के राजकुमार। न्यारांग के मुखिया द्वारा अपने पड़ोसियों पर चढ़ाई से यह समस्या उत्पन्न हुई थी, इसलिए तिब्बती सरकार ने सेना भेजकर न्यारांग के मुखिया को परास्त किया और उसके स्थान पर एक तिब्बती राज्यपाल नियुक्त किया, जिसे दंर्गे और होरपा जागीरों के देखभाल की जिम्मेदारी भी सौंपी गयी।

तिब्बतियों ने उन्हें इसकी अनुमति इस आधार पर नहीं दी कि तिब्बत के लोग चीन के प्रभुत्व को स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार के दो और समझौते 24 जुलाई, 1886 का पीकिंग समझौता और 17 मार्च, 1890 का कलकत्ता समझौता भी तिब्बतियो द्वारा खारिज कर दिया गया। तिब्बती सरकार ने ब्रिटिश लोगों से किसी भी तरह का संबंध रखना स्वीकार नहीं किया, जो कि उनके क्षेत्र के बारे में चीन से बातचीत कर रहे थे। यह लगभग 1901में रूस व तिब्बत के बीच हुए नये समझौते के अनुरूप ही था। इसके बाद दलाई लामा और रूसी जार के बीच पत्रों व उपहारों का आदान-प्रदान किया गया। इससे तिब्बत के मामले में रूसी हस्तक्षेप के बारे में ब्रिटिश लोगों का संदेह और गहरा हो गया। एशिया में रूस की ताकत बढ़ती जा रही थी जिसके कारण ब्रिटिश सरकार यह सोचने लगी कि उनके हितों पर खतरा मंडरा रहा है। कर्नल यंग हस्बेंड के नेतृत्व में एक ब्रिटिश अभियान दल ने तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और 3 अगस्त, 1904 को ल्हासा में प्रवेश किया।

## तिब्बत-ब्रिटेन समझौता 1904

7 सितंबर, 1904 को तिब्बत और ब्रिटेन के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। ब्रिटिश चढ़ाई के दौरान तिब्बत ने एक स्वतंत्र देश के रूप में मामले को संभाला। तिब्बत पर ब्रिटेन की चढ़ाई का पीकिंग ने कुछ खास विरोध नहीं किया।

जब ब्रिटिश लोगों ने तिब्बत पर चढ़ाई की तो 13वें दलाई लामा मंगोलिया चले गये। चीन पर शासन करने वाले मांचुओं ने तिब्बत के मामले में दखल देने का अंतिम प्रयास किया और कुख्यात चाओ अरफेंग के नेतृत्व में एक अभियान भेजा। जब दलाई लामा आमदो प्रांत के कुमबुम मठ में थे तभी उन्हें दो संदेश प्राप्त हुए। एक ल्हासा से, जिसमें उनसे अनुरोध किया गया था कि वह अति शीघ्र ल्हासा लौट आएं क्योंकि लोग उनकी सुरक्षा को लेकर चिंतित थे और चाओ अरफेंग की सैन्य टुकड़ी का विरोध नहीं कर सकते थे। दूसरा संदेश पीकिंग से आया था जिसमें उनसे चीन की राजधानी की यात्रा करने का अनुराध किया गया था। दलाई लामा ने यह सोचकर पीकिंग जाने का निर्णय लिया कि वह चीनी शासक को इस बात के लिए राजी कर लेंगे कि वह तिब्बत पर सैन्य आक्रमण रोके और वहां तिब्बत पर सैन्य आक्रमण रोके और वहां से अपनी सेनाएं हटा ले।

लेकिन जब अंतिम रूप से 1909 में दलाई लामा ल्हासा लौटे तो उन्होंने देखा कि पीकिंग से प्राप्त सभी आश्वासनों के विपरीत चाओ अरफेंग की सैन्य टुकड़ी ने वहां अपने पांव जमा चुके थे। 1910 के वार्षिक मोनलम उत्सव के दौरान जनरल चुंग यिंग के नेतृत्व में लगभग 2,000 मांचू व चीनी सैनिको ने ल्हासा में प्रवेश किया और उन्होंने वहां नरसंहार, बलात्कार, हत्या और अत्यधिक विनाच्च की घटनाओं को अंजाम दिया। एक बार पुनः दलाई लामा को ल्हासा छोड़ना पड़ा। उन्होंने अपनी अनुपस्थिति में शासन करने के लिए एक रीजेंट की नियुक्ति कर दी और यह सोचकर दक्षिणी शहर ड्रोमो की ओर चल पड़े कि यदि आवश्यकता पड़ी तो वह ब्रिटिश भारत में चले जाएंगे। ल्हासा की घटनाओं और चीनी सैन्य टुकड़ी के पीछे लगे होने के कारण उन्हें एक बार पुनः अपना देश छोड़ने को मजबूर होना पड़ा। भारत में दलाई लामा और उनके मंत्रियों ने ब्रिटिश सरकार से तिब्बत की सहायता करने की मांग की। जबकि मांचू सैन्य दस्ते ने तिब्बत सरकार को उखाड़ने और तिब्बत को चीन के प्रांतो के अनुसार विभाजित करने का प्रयास किया, ठीक वैसा ही जैसा कि लगभग आधी शताब्दी बाद साम्यवादी चीन ने किया।

जनवरी 1913 में मंगोलिया के उर्गा नामक स्थान पर तिब्बत व मंगोलिया के बीच एक द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किया गया। उक्त समझौते में दोनो देशों ने अपने को स्वतंत्र और चीन से अलग घोषित किया। जनवरी, 1913 में भारत से लौटने के बाद 13वें दलाई लामा ने जल-बैल (वाटर-ऑक्स) वर्ष के पहले महीने के आठवें दिन (मार्च, 1913) तिब्बत की पूर्ण स्वतंत्रता का एक औपचारिक घोषणापत्र जारी किया। तेरहवें दलाई लामा ने अपने शासन काल के दौरान उथल-पुथल के बावजूद अंतरराष्ट्रीय संबंधों की शुरुआत की, आधुनिक डाक व तार सेवाओं की शुरुआत की और तिब्बत को आधुनिक बनाने के प्रयास किये। 17 दिसंबर 1933 को उनका देहांत हो गया।

इसके बाद उन्हें श्रद्धांजलि प्रदान करने के लिए एक चीनी शिष्टमंडल ल्हासा पहुंचा, लेकिन वास्तव में वे चीन-तिब्बत सीमा के मद्दे को

सुलझाने के लिए आये थे। मुख्य प्रतिनिधि के जाने के बाद एक अन्य चीनी प्रतिनिधि ने चर्चा लगातार जारी रखी। चीनी प्रतिनिधि को उसी आधार पर ल्हासा में रहने की अनुमति प्रदान की गयी जिस आधार पर नेपाली और भारतीय प्रतिनिधि वहां रहते थे। लेकिन 1949 में चीनी प्रतिनिधि को तिब्बत से निकाल दिया गया। सितम्बर 1949 में साम्यवादी चीन ने सितम्बर 1949 में साम्यवादी चीन ने बिना किसी कारण के पूर्वी तिब्बत पर चढ़ाई कर दी और पूर्वी तिब्बत के राज्यपाल के मुख्यालय चामदो पर अधिकार कर लिया। चीन के इस आक्रमण के विरोध में 11 नवंबर, 1950 को तिब्बत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में आवाज उठायी। हालांकि अल सल्वाडोर ने इस प्रश्न को उठाया था लेकिन संयुक्त राष्ट्र महासभा की संचालन समिति ने इस मुद्दे को टाल दिया।

तिब्बत के समक्ष आ चुके महान संकट को देखते हुए 17 नवंबर, 1950 को परम पावन चौदहवें दलाई लामा ने राष्ट्राध्यक्ष के रूप में पूर्ण आध्यात्मिक व लौकिक सत्ता ग्रहण की, जबकि उस समय वह मात्र छह वर्ष के थे। पीकिंग के दौरे पर गये एक तिब्बती प्रतिनिधि मंडल से जबरदस्ती एक समझौते पर हस्ताक्षर करवाया गया जिसे तथाकथित रूप से तिब्बत के शांतिपूर्ण आजादी के उपाय पर 17 बिंदुओं वाला समझौता' कहा गया। जबकि यह प्रतिनिधिमंडल चीनी हमले के बारे में बातचीत करने के लिए पीकिंग गया था। इस समझौते के लिए तिब्बत के नकली आधिकारिक मुहर का प्रयोग किया गया और तिब्बत में और सैन्य कार्रवाई की धमकी दी गयी।

इसके बाद तिब्बती लोगों के जबरदस्त प्रतिरोध की परवाह न करते हुए चीन ने तिब्बत को अपना एक उपनिवेश बनाने की योजना को लागू करने के लिए उक्त समझौते के दस्तावेज का उपयोग किया।

9 सितम्बर, 1951 को हजारों चीनी सैनिकों ने ल्हासा में मार्च किया। तिब्बत पर जबरन अधिग्रहण के बाद योजनाबद्ध रूप से यहां के मठों का विनाश किया गया, धर्म का दमन किया गया, लोगों की राजनीतिक स्वतंत्रता छीन ली गयी, बड़े पैमाने पर लोगों को गिरफ्तार और कैद किया गया तथा निर्दोष पुरूषों, महिलाओं और बच्चों का कत्ले-आम किया गया। ल्हासा पर चीनी कब्जे के विरोध में 10 मार्च, 1959 को तिब्बती लोगों ने राष्ट्रव्यापी प्रतिरोध शुरू किया। चीनियों ने इसका ऐसा निर्दयतापूर्ण प्रतिकार किया जैसा कि तिब्बत के लोगों ने कभी नहीं देखा था। हजारों पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को सरेआम चौराहों पर मौत के घाट उतार दिया गया और बहुत से तिब्बतियों को कैद कर दिया गया या निर्वासित कर दिया गया। भिक्षु और भिक्षुणियां चीनी प्रतिशोध के मुख्य निशाने थे। मठों और मंदिरों पर गोले बरसाये गये। 17 मार्च, 1959 को दलाई लामा ने ल्हासा छोड़ दिया और अपना पीछा कर रहे चीनियों से बचते हुए राजनीतिक शरण लेने के लिए भारत पहुँच गये। उनके साथ निर्वासित तिब्बतियों का एक भारी जनसमूह था। इतिहास में कभी भी इस प्रकार की परिस्थिति नहीं उत्पन्न हुई थी की इतने तिब्बतियों को अपनी जन्मभूमि छोड़नी पड़ी हो। इस समय पूरी दुनिया में एक लाख से अधिक तिब्बती शरणार्थी हैं।

# अखण्ड भारत का एक खण्ड अफ़गानिस्तान

## अवगाहन से अफगान और अफगानिस्तान

एक भूभाग अवगाहन के लिए। जहां श्रुति, स्मृति, शास्त्र, उपनिषद आदि मानव संविधान का अवगाहन किया जाता हो। अध्ययन और अध्यापन किया जाता हो। मानव सभ्यता के लिए संवैधानिक अवगाहन स्थल। इस्लामी गणराज्य दक्षिण एशिया में अवस्थित देश है, जो विश्व का एक भू-आवेष्ठित देश है। वैदिक सनातन साहित्य में वर्णित जम्बू द्वीप का एक प्रमुख भूभाग।

फ़ारसी भाषा के अफ़गान रूप को दरी कहते हैं। अफ़्ग़ानिस्तान का नाम अफगान और स्थान या (स्तान)जिसका मतलब भूमि होता है से लकर बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है अफ़गानों की भूमि। स्थान या (स्तान) भारत की प्राचीन भाषा संस्कृत का शब्द है- पाकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, कज़ाख़स्तान, हिन्दुस्तान इत्यादि जिसका अर्थ है भूमि या देश। यहां सभी मे थ का उच्चारण दोष त हुआ है। अफ़्गान का अर्थ यहां के सबसे अधिक वसित नस्ल (पश्तून) को कहते है। अफ़्गान शब्द को संस्कृत अवगान से निकला हुआ माना जाता है। ध्यान रहे की 'अफ़्ग़ान' शब्द में ग़ की ध्वनी है और 'ग' की नहीं। 'स्तान' का अर्थ है स्थान या भूमि। अफगानिस्तान का अर्थ है अफगानों की भूमि। शब्द 'स्तान' का उपयोग कुर्दिस्तान और उज़बेकिस्तान के नामों में भी किया जाता है। अफगानिस्तान नाम अफ्गान समुदाय की जगह के रूप में प्रयुक्त किया गया है, यह नाम सबसे पहले 10 वीं शताब्दी में हूदूद उल-आलम (विश्व की सीमाएं) नाम की भौगोलिक किताब में आया था इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है। साल 2006 में पारित देश के संविधान में अफगानिस्तान के सभी नागरिकों को अफ्गान कहा गया है जो अफगानिस्तान के सभी नागरिक अफ्गान है। अप्रैल 2007 में अफगानिस्तान सार्क का आठवाँ सदस्य बना था। अफगानिस्तान के पूर्व में पाकिस्तान, उत्तर पूर्व में भारत तथा चीन, उत्तर में ताजिकिस्तान, कज़ाकस्तान तथा तुर्कमेनिस्तान तथा पश्चिम में ईरान है।यह रेशम मार्ग और मानव प्रवास का एक प्राचीन केन्द्र बिन्दु रहा है। पुरातत्वविदों को मध्य पाषाण काल के मानव बस्ती के साक्ष्य मिले हैं। पश्चिमी इतिहासकारों के अनुसार इस क्षेत्र में नगरीय सभ्यता की शुरुआत 3,000 से 2,000 ई.पू. के रूप में मानी जा सकती है। हालांकि सनातन वैदिक हिन्दू साहित्य में यह आर्यावर्त और जम्बू द्वीप का प्रमुख भाग रहा है।

यह क्षेत्र एक ऐसे भू-रणनीतिक स्थान पर अवस्थित है जो मध्य एशिया और पश्चिम एशिया को भारतीय उपमहाद्वीप की संस्कृति से जोड़ता है। इस भूमि पर कुषाण, हफ्थलिट, समानी, गजनवी, मोहमद गौरी, मुगल, दुर्रानी और अनेक दूसरे प्रमुख साम्राज्यों का उत्थान हुआ है। प्राचीन काल में फ़ारस तथा शक साम्राज्यों का अंग रहा अफ़्ग़ानिस्तान कई सम्राटों, आक्रमणकारियों तथा विजेताओं की कर्मभूमि रहा है। इनमें सिकन्दर, फारसी शासक दारा प्रथम, तुर्क,मुगल शासक बाबर, मुहम्मद गौरी, नादिर शाह सिख साम्राज्य इत्यादि के नाम प्रमुख हैं। ब्रिटिश सेनाओं ने भी कई बार अफ़गानिस्तान पर आक्रमण किया।

अफ़गानिस्तान के प्रमुख नगर हैं- राजधानी काबुल, कन्धार (गन्धार प्रदेश) भारत के प्राचीन ग्रन्थ महाभारत में इसे गन्धार प्रदेश कहा जाता था। यहाँ कई नस्ल के लोग रहते हैं जिनमें पश्तून (पठान या अफ़ग़ान) सबसे अधिक हैं। इसके अलावा उज्बेक, ताजिक, तुर्कमेन और हज़ारा शामिल हैं। यहाँ की मुख्य भाषा पश्तो है।

अफ़गानिस्तान का उत्थान स्वरूप अवश्य जानना चाहिए।

अफ़ग़ानिस्तान चारों ओर से ज़मीन से घिरा हुआ है और इसकी सबसे बड़ी सीमा पूर्व की ओर पाकिस्तान से लगी है। इसे डूरण्ड रेखा भी कहते हैं। केन्द्रीय तथा उत्तरपूर्व की दिशा में पर्वतमालाएँ हैं जो उत्तरपूर्व में ताजिकिस्तान स्थित हिन्दूकुश पर्वतों का विस्तार हैं। अक्सर तापमान का दैनिक अन्तरण अधिक होता है। 1934 में लीग आफ नेशन का सदस्य हुआ 1945 में है संयुक्त राष्ट्र संघ में शामिल हुआ।

अफ़ग़ानिस्तान में कुल 34 प्रशासनिक विभाग हैं। वस्तुतः ये प्रांतीय इकाइयां हैं। इनके नाम हैं - बदख़्शान, बदगीश बाग़लान, बाल्क़, बमयन ,दायकुंडी फ़राह, फ़रयब, ग़ज़नी, ग़ोर, हेलमंद, हेरात, ज़ोजान, क़ाबुल, कांदहार (कांधार), क़पिसा, ख़ोस्त, कोनार, कुन्दूज, लगमान, लोगर, नांगरहर, निमरूज़ ,नूरेस्तान ओरुज़्ग़ान, पक्ति़या, पक्ति़का, पंजशिर, परवान, समंगान, सरे पोल, तक़ार, वारदाक़, ज़बोल।

## मेडियाई साम्राज्य से तालिबान तक

ईसा के कोई 600 साल पहले तक अफ़गान क्षेत्र मेडियाई साम्राज्य के अंग हुआ करते थे। इस समय मेडी लोग असीरियाई लोगों के साथ जूडिया और मध्यपूर्व पर आक्रमण में मदद करते थे। पार्स के लोग उनके अनुचर सहयोगी हुआ करते थे। पर सन् 559 ईसापूर्व में पार्स (आधुनिक ईरान का फ़ार्स प्रांत) के राजकुमार कुरोश ने मेडिया के खिलाफ विद्रोह कर दिया। कुरोश ने इस तरह हखामनी साम्राज्य की स्थापना की जो सिकन्दर के आक्रमण तक कायम रहा। उसके बाद उसने असीरिया पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद कुरोश का साम्राज्य बढ़ता ही गया और यह मिस्र से लेकर आधुनिक पाकिस्तान की पश्चिमी सीमा तक फैल गया।

ईसापूर्व 230 में मौर्य शासन के तहत अफ़गानिस्तान का संपूर्ण इलाका आ चुका था पर मौर्यों का शासन अधिक दिनों तक नहीं रहा। ईसा के 700 साल पहले इसके उत्तरी क्षेत्र में गांधार महाजनपद था जिसके बारे में भारतीय स्त्रोत महाभारत तथा अन्य ग्रंथों में वर्णन मिलता है। ईसापूर्व 500 में फ़ारस के हखामनी शासकों ने इसको जीत लिया। सिकन्दर के फारस विजय अभियान के तहते अफ़गानिस्तान भी यूनानी साम्राज्य का अंग बन गया। इसके बाद यह शकों के शासन में आए। शक स्कीथियों के भारतीय अंग थे। ईसापूर्व 230 में मौर्य शासन के तहत अफ़ग़ानिस्तान का संपूर्ण इलाका आ चुका था पर मौर्यों का शासन अधिक दिनों तक नहीं रहा। इसके बाद पार्थियन और फ़िर सासानी शासकों ने फ़ारस में केन्द्रित अपने साम्राज्यों का हिस्सा इसे बना लिया। सासनी वंश इस्लाम के आगमन से पूर्व का आखिरी ईरानी वंश था। अरबों ने ख़ुरासान पर सन् 707 में अधिकार कर लिया। सामानी वंश, जो फ़ारसी मूल के पर सुन्नी थे, ने 987 इस्वी में अपना शासन गजनवियों को खो दिया जिसके फलस्वरूप लगभग संपूर्ण अफ़ग़ानिस्तान ग़ज़नवियों के हाथों आ गया। ग़ोर के शासकों ने गज़नी पर 1183 में अधिकार कर लिया।

आज जो अफ़गानिस्तान है उसका मानचित्र उन्नीसवीं सदी के अन्त में तय हुआ। अफ़ग़ानिस्तान शब्द कितना पुराना है इसपर तो विवाद हो सकता है पर इतना तय है कि 1700 इस्वी से पहले दुनिया में अफ़ग़ानिस्तान नाम का कोई राज्य नहीं था। प्राचीन अफ़गानिस्तान पर कई फ़ारसी साम्राज्यों का अधिकार रहा। इनमें हख़ामनी साम्राज्य (ईसापूर्व 559–ईसापूर्व 330) का नाम प्रमुख है।

सिकन्दर का आक्रमण 328 ईसापूर्व में उस समय हुआ जब यहाँ प्रायः फ़ारस के हखामनी शाहों का शासन था। उसके बाद के ग्रेको-बैक्ट्रियन शासन में बौद्ध धर्म लोकप्रिय हुआ। ईरान के पार्थियन तथा भारतीय शकों के बीच बँटने के बाद अफ़ग़ानिस्तान के आज के भूभाग पर सासानी शासन आया। फ़ारस पर इस्लामी फ़तह का समय कई साम्राज्यों के समय रहा।

पहले बग़दाद स्थित अब्बासी ख़िलाफ़त, फिर खोरासान में केन्द्रित सामानी साम्राज्य और उसके बाद ग़ज़ना के शासक। गज़ना पर ग़ोर के फारसी शासकों ने जब अधिपत्य जमा लिया तो यह गोरी साम्राज्य का अंग बन गया। मध्यकाल में कई अफ़ग़ान शासकों ने दिल्ली की सत्ता पर अधिकार किया या करने का प्रयत्न किया जिनमें लोदी वंश का नाम प्रमुख है। इसके अलावा भी कई मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अफगान शाहों की मदद से भारत पर आक्रमण किया था जिसमें बाबर, नादिर शाह तथा अहमद शाह अब्दाली शामिल है। अफ़गानिस्तान के कुछ क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के अंग थे।

अहमद शाह अब्दाली ने पहली बार अफ़गानिस्तान पर एकाधिपत्य कायम किया। वह अफ़ग़ान (यानि पश्तून) था। 1751तक अहमद शाह ने वे सारे क्षेत्र जीत लिए जो वर्तमान में अफगानिस्तान और पाकिस्तान है। थोड़े समय के लिए उसका ईरान के खोरासान और कोहिस्तान प्रान्तों और दिल्ली शहर पर भी अधिकार था। 1761में पानीपत के तृतीय युद्ध में उसने मराठा साम्राज्य को पराजित किया। 1772 में अहमद शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र तिमूर शाह दुर्रानी गद्दी पर बैठा। उसने अफगान साम्राज्य की राजधानी कन्दहार से बदलकर काबुल कर दी। 1793 में उसकी मृत्यु हो गयी। उसके बाद उसका बेटा ज़मान शाह गदी पर बैठा। धीरे-धीरे दुर्रानी साम्राज्य निर्बल होता गया। अन्ततः सिखों ने महाराजा रणजीत सिंह के नेतृत्व में दुर्रानी साम्राज्य के एक बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। सिखों के अधिकार में जो क्षेत्र आये उनमें वर्तमान पाकिस्तान (किन्तु बिना सिन्ध) शामिल था।

ब्रितानी भारत के साथ हुए कई संघर्षों के बाद अंग्रेज़ों ने ब्रिटिश भारत और अफ़गानिस्तान के बीच सीमा उन्नीसवीं सदी में तय की। 1933 से लेकर 1973 तक अफ़ग़ानिस्तान पर ज़ाहिर शाह का शासन रहा जो शांतिपूर्ण रहा। इसके बाद कम्यूनिस्ट शासन और सोवियत अतिक्रमण हुए। 1979 में सोवियतों को वापस जाना पड़ा। इनकों भगाने में मुजाहिदीन का प्रमुख हाथ रहा। 1997 में तालिबान जो अडिगपंथी सुन्नी कट्टर हैं, ने सत्तासीन निर्वाचित राष्ट्रपति को बेदखल कर दिया। इनको अमेरिका का साथ मिला पर बाद में वे अमेरिका के विरोधी हो गए। 2001में अमेरिका पर हमले के बाद यहाँ पर नैटो की सेना बनी हुई थी।

उन्नीसवीं सदी में आंग्ल-अफ़ग़ान युद्धों के कारण अफ़ग़ानिस्तान का काफी हिस्सा ब्रिटिश इंडिया के अधीन हो गया जिसके बाद अफगानिस्तान में यूरोपीय प्रभाव बढ़ता गया। उधर उत्तर में रूसी साम्राज्य का विस्तार दक्षिण की तरफ होता जा रहा था। अंग्रेज़ों को डर था कि यदि वे अफ़गानिस्तान में घुस आते हैं तो उनके भारतीय अधिकार पर खतरा हो सकता है। इस लिए ब्रिटेन और रूस दोनों ने अफ़ग़ानिस्तान में दखल देना आरंभ किया। इस घटना को महाखेल का नाम दिया जाता है जिसमें दक्षिणी खोरासान (यानि अफ़गानिस्तान और पूर्वोत्तर ईरान) में दोनों देश अपने सहयोगियों के साथ अपने हित साधने में लगे थे।

1826 में दोस्त मोहम्मद काबुल की गद्दी पर बैठा। उसने अपने क़िज़िलबश कबीले के लोगों की मदद से अपनी स्थिति मजबूत की और अपने भाइयों के खतरे से अपने को ऊपर किया। उसके उपर जो सबसे बड़ी विपत्ति उस समय थी वो ये थी कि खाइबर के पूर्व में पश्तून इलाकों पर सिक्ख सेना अपना अधिकार जमा रही थी। 1834 में पूर्व शाह शुजा दुर्रानी को दोस्त ने हरा दिया। शाह शुजा की मदद का बहाना बना कर अंग्रेज़ों ने काबुल पर हमला किया। 16 हजार की सेना में केवल एक अंग्रेज़ बटालियन थी और बाकी भारतीय सेना और उनके परिवार वाले थे। पर इनमें से केवल एक अंग्रेज़ वापस लौटकर जलालाबाद पहुँच सका। बाकी भारतीय कहां गए इसकी कोई जानकारी उपलब्ध नही है।

शाहशुजा के काबुल से दूर रहने के कारण सिक्ख पश्चिम की ओर और आगे बढ़ गए। रणजीत सिंह की सेना ने पेशावर पर अधिकार कर लिया। पेशावर के पश्चिम में वो इलाके थे जिसपर काबुल का सीधा नियंत्रण बनता था। अब स्थिति चिंतनीय हो गई थी। 1836 में जमरूद में दोस्त मोहम्मद की सेना ने उसके बेटे अकबर खान के नेतृत्व में सिक्खों को हरा दिया पर वे सिक्खों को पूर्णतः पीछे नहीं धकेल सके। पेशावर पर दुबारा आक्रमण करने की बजाय उसने ब्रिटिश भारत के नवनियुक्त गवर्नर लॉर्ड ऑकलैंड से सिक्खों के खिलाफ़ एक मोर्चे के लिए संपर्क किया। इसके साथ ही अफ़ग़ानिस्तान में यूरोपीय हस्तक्षेप का सिलसिला शुरु हुआ।

ब्रिटेन और फ्रांस के बीच 1763 में हुए पेरिस की संधि के बाद अंग्रेज भारत में एक मात्र यूरोपीय शक्ति बच गए थे। उधर रूसी साम्राज्य कॉकेशस से दक्षिण की तरफ बढ़ रहा था। जिस बात से ब्रिटिश साम्राज्य को सबसे अधिक चिंता हो रही थी वो थी ईरानी दरबार में बढ़ता हुआ रूसी प्रभाव। 1837 में रूस ने ईरान के शाह को हेरात पर नियंत्रण के लिए प्रोत्साहित किया। हेरात पर ईरानी नियंत्रण के बाद अंग्रेज़ों को रूस की साम्राज्यवादी नीति से डर सा लगने लगा। ऑकलैंड ने दोस्त मुहम्मद से रूसियों तथा ईरानियों के साथ सभी सम्पर्क तोड़ लेने को कहा। इसके बदले में ऑकलैंड ने ये वादा किया कि वे रणजीत सिंह के साथ अफ़गानों की मित्रता बहाल करेगा। पर जब ऑकलैंड ने ये लिखित रूप से देने से मना कर दिया तब दोस्त मुहम्मद ने मुँह फेर लिया और रूसियों के साथ वार्ता आरंभ कर दी।

1919 में अफ़ग़ानिस्तान ने विदेशी ताकतों से एक बार फिर

स्वतंत्रता पाई। आधुनिक काल में 1933 से 1973 के बाच का काल अफ़ग़ानिस्तान का सबसे अधिक व्यवस्थित काल रहा जब ज़ाहिर शाह का शासन था, पर पहले उसके जीजा तथा बाद में कम्युनिस्ट पार्टी के सत्तापलट के कारण देश में फिर से अस्थिरता आ गई। सोवियत सेना ने कम्युनिस्ट पार्टी के सहयोग के लिए देश में कदम रखा और मुजाहिदीन ने सोवियत सेनाओं के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया और बाद में अमेरिका तथा पाकिस्तान के सहयोग से सोवियतों को वापस जाना पड़ा। 11सितम्बर 2001के हमले में मुजाहिदीन के सहयोग होने की खबर के बाद अमेरिका ने देश के अधिकांश हिस्से पर सत्तारुढ़ मुजाहिदीन (तालिबान), जिसको कभी अमेरिका ने सोवियत सेनाओं के खिलाफ लड़ने में हथियारों से सहयोग दिया था, के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया।

फरवरी 2007 से देश में नैटो (NATO) की सेनाएं बनी थीं और देश में लोकतांत्रिक सरकार का शासन था जो आज समाप्त हो गया।

## पांडवों के नाम पर ही पंजशीर घाटी, हिंदुकुश है गवाह

उत्तर-मध्य अफ़ग़ानिस्तान में स्थित एक घाटी है पंजशीर। यह राष्ट्रीय राजधानी काबुल से 150 किमी उत्तर में हिन्दु कुश पर्वतों के पास स्थित है। यह वादी पंजशीर प्रान्त में आती है और इसमें से प्रसिद्ध पंजशीर नदी गुज़रती है। यहाँ के आधुनिक बाशिंदों में अफ़ग़ानिस्तान का सबसे बड़ा ताजिक लोगों का समुदाय भी शामिल है। वास्तव में आज का जो पंजशीर है इस नाम का सीधा संबंध महाभारत काल के पाँच पांडवों से है। हिंदुकुश के इस केंद्र को बहुत सलीके से समझने की जरूरत है। सारे नाम बदल देने भर से मूल इतिहास नही बदल सकता। जब हिंदुकुश जैसा विशुद्ध सनातन वैदिक नाम आज भी वैसे ही है तो स्वाभाविक है कि यह क्षेत्र महान सनातन वैदिक सभ्यता का ही क्षेत्र है।

यह तो विश्व स्वीकार करता है कि अफगानिस्तोन का महाभारत के साथ काफी गहरा रिश्तो है। पेशावर घाटी और काबुल नदी घाटी तक महाभारत का इतिहास फैला हुआ है। नवंबर 2013 में एशिया और अफ्रीका की तरफ से हुई एक अध्ययन में यह बात साबित हुई थी कि अफगानिस्ता न का हजारों साल पहले महाभारत से गहरा रश्ताई रहा है। यही नहीं अफगानस्तिान के जसि हस्सिेब को हम आज कंधार के नाम से जानते हैं वह कभी गंधार साम्राज्या के नाम से जाना जाता था। गंधार शब्दा का जिक्र ऋग्वेरद, उत्त र रामायण और महाभारत में भी मिलता है। गंधार का एक बड़ा हिस्सा उत्तबरी पाकिस्तान और कुछ हिस्साग पूर्वी अफगानिस्तांन में है। गंधार साम्राज्यि पोथोहार, पेशावर घाटी और काबुल नदी घाटी तक फैला था।

महाभारत काल में जक्रि मलिता है कि गंधार पर आज से 5500 साल पहले राजा सुबाला ने राज किया था। उनकी बेटी का नाम गांधारी था जिनकी शादी हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र से हुई थी। गंधारी के भाई शकुनी थे। राजा सुबाला की मृत्युस के बाद गंधार साम्राज्य् की सत्ता शकुनी ने संभाली। मान्यता यह भी है कि गंधार में शविजी की पूजा की जाती थी। इसका तात्प र्य गंधार शब्दु से माना जाता है क्योंभकि गंधार शब्दम गंध से बना है। गंध यानी कि खुशबू और गंधार का पूरा शाब्दिक अर्थ खुशबू की धरती। मान्ययता है कि काबुल नदी के तट पर लोग रहा करते थे। उत्तार-पश्चिम पंजाब भी किसी समय में गंधार का हिस्सार थे। कई और शोध पत्रों में इस बात की पुष्टि की गई है कि नॉर्थ-वेस्टी पंजाब, ईरान, भारत और सेंट्रल एशिया से संपर्क का रास्ताा था।

महाभारतकाल में अफगानस्तिीन का कंधार जो कि गंधार साम्राज्य था। यह काफी शक्तिशाली साम्राज्यन था। मान्यैता है कि 18 दनिों तक चले महायुद्ध महाभारत में पांडवों से हार के बाद कौरव वंश के कई लोग गंधार साम्राज्या में रहने लगे थे। बाद में वे धीर-धीरे इराक और सऊदी अरब में चले गए। बाद में गंधार पर मौर्य साम्राज्यं के राजाओं का राज हो गया। इसके बाद फिर मुगलों का हमला हुआ। मोहम्मरद गजनी ने भी यहां पर हमला किया। गजनी ने दसवीं सदी में इस पर कब्जाह कर लिया।

'पंजशीर' वास्तव में 'पंज शेर' (पांच शेर) कहने का फ़ारसी लहजा है। फ़ारसी में 'शेर' का मतलब 'बाघ' की बजाए 'सिंह' (बबर शेर) होता है। इस वादी का नाम पाँच पांडव भाईयों के सम्मान में रखा गया है। आधुनिक भारत विरोधी इतिहासकार और पश्चिमी पिछलग्गू इस कहानी को अत्यंत गंदे ढंग से प्रस्तुत करते हैं। ये पांच पांडवों की बजाय किन्ही ऐसे पाँच भाइयों की कहानी लिखते हैं जिन्होनें 10वीं शताब्दी ईसवी में महमूद ग़ज़नी ले लिए यहाँ एक दुर्गम नदी पर बाँध डाला था। पश्चिमी इतिहासकारों की यह कहानी बिल्कुल झूठी है। प्रख्यात इतिहासकार प्रो हिमांशु चतुर्वेदी कहते हैं कि पश्चिम के इतिहासकारों को अब अपनी इस झूठी कथा का गान बंद कर देना चाहिए क्योंकि अब तो वहां की एक गुफा में टाइम जोन में फंसा महाभारत कालीन विमान खुद ही गवाही दे रहा है।

इस क्षेत्र पर 16 वीं शताब्दी की शुरुआत और 18 वीं शताब्दी के मध्य में बुखारा के खानटे का शासन था । जैसा कि अहमद शाह दुर्रानी के उत्तरी अफगानिस्तान विजय परवान क्षेत्र है जिसमें निहित आज के पंजशीर द्वारा विजय प्राप्त की थी, शुरू किया अहमद शाह दुर्रानी और आधिकारिक तौर पर एक भाग के रूप में स्वीकार कर लिया । दुर्रानी से मुराद बेग के बुखारा दोस्ती की एक संधि के बाद में या 1750 के बारे में हस्ताक्षर किए गए थे, और हिस्सा बन गया की दुर्रानी साम्राज्य । यह पूरी तरह से दुर्रानी और बरकजई राजवंश द्वारा शासित था , और 19 वीं

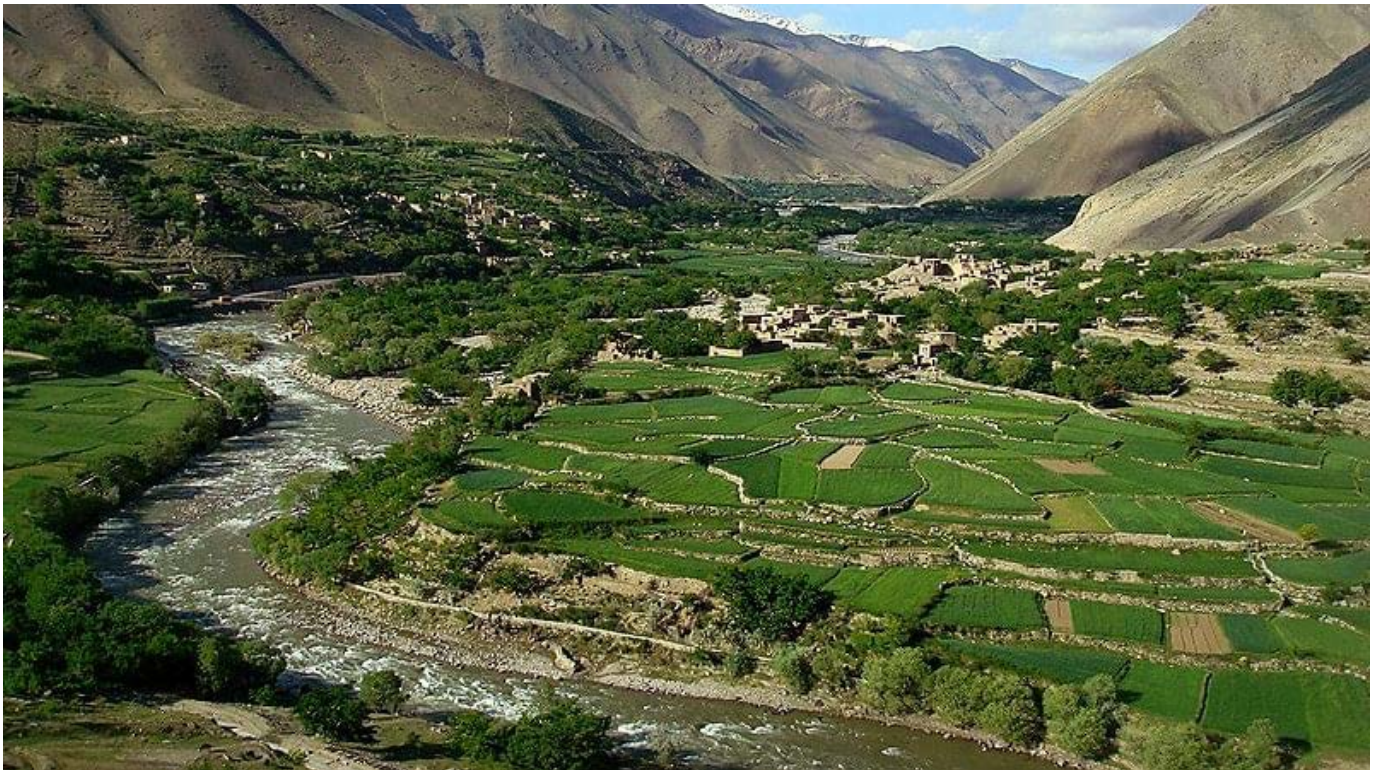

शताब्दी के एंग्लो-अफगान युद्धों के दौरान अंग्रेजों से अछूता था। पंजशीर पर सोवियत-अफगान युद्ध के दौरान अहमद शाह मसूद और उसकी सेना के खिलाफ कई बार हमला किया गया था।

1973 में, मोहम्मद दाउद खान ने अफगानिस्तान में सत्ता संभाली और पाकिस्तान से खैबर पख्तूनख्वा वापस लेने की धमकी देना शुरू कर दिया , जिससे पाकिस्तान की सरकार को बड़ी चिंता हुई। 1975 तक, युवा अहमद शाह मसूद और उनके अनुयायियों ने पंजशीर में एक विद्रोह शुरू किया, लेकिन उन्हें पाकिस्तान के पेशावर में भागने के लिए मजबूर होना पड़ा, जहां उन्हें पाकिस्तानी प्रधान मंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो का समर्थन मिला। कहा जाता है कि भुट्टो ने काबुल में अप्रैल 1978 की सौर क्रांति का मार्ग प्रशस्त किया, जिससे दाऊद ने अफगान सशस्त्र बलों को ग्रामीण इलाकों में फैला दिया। एक विद्रोह के बाद 17 अगस्त 1979 से पंजशीर क्षेत्र विद्रोही नियंत्रण में था, और 1980 के दशक के सोवियत-अफगान युद्ध के दौरान पीडीपीए सरकार और सोवियत संघ के खिलाफ मुजाहिदीन कमांडरों द्वारा इस क्षेत्र का अच्छी तरह से बचाव किया गया था।

1992 में डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ अफगानिस्तान के पतन के बाद यह क्षेत्र इस्लामिक स्टेट ऑफ अफगानिस्तान का हिस्सा बन गया। 1990 के दशक के अंत तक, पंजशीर और पड़ोसी बदख्शां प्रांत ने तालिबान के खिलाफ उत्तरी गठबंधन के लिए एक मंच के रूप में कार्य किया। 9 सितंबर, 2001को, अल-कायदा के दो गुर्गों द्वारा रक्षा मंत्री मसूद की हत्या कर दी गई थी। दो दिन बाद संयुक्त राज्य अमेरिका में सितंबर 2001के हमले हुए और इसके कारण अफगानिस्तान में अमेरिका के नेतृत्व में एक बड़े युद्ध की शुरुआत हुई। पंजशीर घाटी से युक्त , अप्रैल 2004 में परवान प्रांत के पंजशीर जिले को करजई प्रशासन के तहत एक प्रांत में बदल दिया गया था। अफगान राष्ट्रीय सुरक्षा बलों (ANSF) प्रांत में कई ठिकानों की स्थापना की। इस बीच, अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा सहायता बल (आईएसएएफ) ने भी ठिकानों की स्थापना की, एक अमेरिकी नेतृत्व वाली प्रांतीय पुनर्निर्माण टीम (पीआरटी) ने 2000 के दशक के अंत में पंजशीर में काम करना शुरू किया।

यह वादी पुराने ज़माने से यहाँ मिलने वाले रत्नों के लिए जानी जाती है। मध्यकाल में यहाँ चांदी निकाला जाता था जिस से सफ़ारी साम्राज्य और सामानी साम्राज्य अपने सिक्के गढ़ा करते थे। आज भी इस क्षेत्र में पन्ना उत्पादन का बड़ा केंद्र बनने की सम्भावनाएँ हैं। 1985 तक यहाँ बहुत ही बेहतरीन कोटि के 190 कैरट (30 ग्राम) तक के पन्ना मिल चुके थे। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि पंजशीर घाटी काबुल के उत्तर में हिंदू कुश में स्थित है। यह क्षेत्र 1980 के दशक में सोवियत संघ और फिर 1990 के दशक में तालिबान के खिलाफ प्रतिरोध का गढ़ था। इस घाटी में डेढ़ लाख से अधिक लोग रहते हैं। अमरुल्लाह सालेह का जन्म पंजशीर प्रांत में हुआ था और वह वहीं ट्रेन हुए हैं। इस क्षेत्र को कभी भी कोई जीत न सका। न सोवियत संघ, न अमेरिका और न तालिबान इस क्षेत्र पर कभी नियंत्रण कर सका।

तालिबान ने अब तक पंजशीर पर हमला नहीं किया है। सामरिक मामलों के जानकार मानते हैं कि पंजशीर घाटी ऐसी

जगह पर है जो इसे प्राकृतिक किला बनाता है और इसे हमला न होने का एक प्रमुख कारण बताया जाता है। इस घाटी को नॉर्दर्न अलायंस भी कहा जाता है। यह अलायंस 1996 से लेकर 2001तक काबुल पर तालिबान शासन का विरोध करने वाले विद्रोही समूहों का गठबंधन था। एकबार फिर यह अलायंस तालिबान के खिलाफ प्रतिरोध करने के लिए सक्रिय हो चुका है। तालिबान की एकमात्र खिलाफत करने वाले सालेह भी इसी घाटी से हैं।

अफगानिस्तान में संपन्नता के मामले में कई देशों को पीछे छोड़ सकता है, तो शायद कोई इस बात पर विश्वास नहीं करेगा. लेकिन, अगर तथ्यों की बात की जाए, तो अफगानिस्तान साउथ एथिया का सबसे अमीर देश है। दरअसल, अफगानिस्तान में खनिज पदार्थों (Minerals) जैसे लोहा, कॉपर, कोबाल्ट, सोना के अलावा रेयर अर्थ एलिमेंट में गिने जाने वाले लिथियम (lithium In afghanistan) का भंडार है। 2010 में आई एक रिपोर्ट के अनुसार, इन खनिज पदार्थों की संभावित कीमत एक खरब डॉलर से ज्यादा है. लेकिन, 2017 की अफगान सरकार की एक रिपोर्ट के मुताबिक ये तीन खरब डॉलर तक पहुंच सकती है. अफगानिस्तान में पाए जाने वाले लिथियम समेत कई खनिज पदार्थों का इस्तेमाल ग्रीन एनर्जी (Green Energy) के लिए बड़ी तादात में होता है, जो इसकी कीमत को और ज्यादा बढ़ा देता है।अफगानिस्तान में पाए जाने वाले लिथियम समेत कई खनिज पदार्थों का इस्तेमाल ग्रीन एनर्जी के लिए बड़ी तादात में होता है। बीते कई दशकों से युद्ध से जूझ रहे अफगानिस्तान में खनिजों के दोहन के लिए बुनियादी ढांचे की कमी और अस्थिर हालातों की वजह से इन धातुओं को छुआ नहीं जा सका है। अफगानिस्तान के लिथियम भंडार (afghanistan lithium) को लेकर कहा जाता है कि यह लिथियम के सबसे बड़े उत्पादक बोल्विया के बराबर हो सकता है। अब यह आशंका है कि तालिबान के सत्ता में आने के बाद खनिज भंडार के इस खजाने पर उसका कब्जा होना तय है।तालिबान के कब्जे में रहने पर शायद ही अफगानिस्तान कभी अपनी गरीबी को मात दे सकेगा। अमेरिका और अन्य देश भले ही इस्लामिक आतंकी संगठन तालिबान से संबंध न रखें लेकिन, तालिबान के इस खनिज भंडार पर चीन, रूस और पाकिस्तान जैसे देशों की नजर बनी हुई है। चीन इस आतंकी संगठन को अफगानिस्तान में निवेश, हथियारों और अन्य चीजों के जरिये इन खनिज भंडारों पर कब्जा जमाने की कोशिश कर सकता है। चीन की इस साजिश को समझिए।

# सनातन से ही विश्व की सभी संस्कृतियों की उत्पत्ति

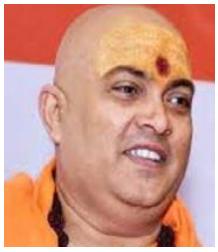

स्वामी जीतेन्द्रानंद सरस्वती

**प्राचीन विश्व मे पृथ्वी पर केवल सनातन वैदिक हिन्दू संस्कृति ही विद्यमान थी। प्रत्येक मनुष्य सनातन होता था। सनातन जीवन था। सनातन चिंतन था। सनातन ही सभ्यता थी। वसुधा कुटुंब था। सृष्टि और प्रकृति के साथ संस्कृति की अवधारणा थी। क्लांतर के कथित विकास और फिर पंथों और विविध उपासना पद्धतियों ने मानव में भेद का निर्माण किया और आज विश्व अशांत और अमानवीय यंत्रणाओं से त्रस्त है। ऐसे में उस प्राचीन सनातन की खोज में अब सभी को लगने की आवश्यकता आ गयी है।**

**सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूदीपं निबोधत।**
**अग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम।।**
**प्रियव्रतोअभ्यषिञ्चतं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम्।।**
**तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः।**
**ज्येष्ठो नाभिरिति ख्यातस्तस्य किम्पुरूषोअनुजः।।**
**नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्व तन्निबोधत।** (वायु 31-37, 38)

यह विदित है कि प्राचीन काल में भारत की सीमा अफगानिस्तान के हिन्दूकुश से लेकर अरुणाचल तक और कश्मीर से लेकर श्रीलंका तक। दूसरी ओर अरुणाचल से लेकर इंडोनेशिया, मलेशिया तक फैली थी। इस संपूर्ण क्षेत्र में 18 महाजनपदों के सम्राटों का राज था जिसके अंतर्गत सैंकड़ों जनपद और उपजनपद थे। सात द्वीपों में बंटी धरती के संपूर्ण जम्बूद्वीप पर सनातन वैदिक हिन्दू धर्म ही स्थापित था।

भारत के प्राचीन ग्रंथों में कहीं पर भी अन्यायपूर्ण युद्धों की प्रशंसा नहीं की गयी है। लोग साधारणता शान्तिपूर्ण जीवन जीने में विश्वास रखते थे। चारों ओर न्याय, वसुधैव कुटुम्बकम, सुख, शान्ति एवं ज्ञान का बोलबाला था।परन्तु आठवीं सदी में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को रौंदता, बर्बाद करता इस्लाम आखिर सोने की चिड़िया कहलाने वाले इस भूभाग पर भी आ धमका और इस पूरे क्षेत्र को धार्मिक

**“विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। ‘मैक्सिको’ शब्द संस्कृत के ‘मक्षिका’ शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।”**

*लेखक अखिल भारतीय संत समिति के राष्ट्रीय महामंत्री और श्रीगंगा महासभा के राष्ट्रीय महामंत्री हैं।*

एवं सांस्कृतिक रूप से तहस-नहस कर डाला। समस्त ज्ञान-विज्ञान एवं उस समय के भव्य मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया। तक्षशिला, नालन्दा एवं विक्रमशिला जैसे विश्वविद्यालयों को नष्ट कर जला दिया गया।

यह तो अब प्रामाणिक है कि प्राचीनकाल में संपूर्ण धरती पर सनातन संस्कृति ही थी। मैक्सिको, अमेरिका, रूस, कजाकिस्तान, ताजिकिस्तान, तुर्कमेनिस्तान, उजबेकिस्तान, किर्गिस्तान, तुर्की, सीरिया, इराक, स्पेन, इंडोनेशिया, चीन आदि सभी जगह पर हिन्दू धर्म से जुड़े साक्ष्य पाए गए हैं। विद्वानों अनुसार अरब की यजीदी, सबाइन, सबा, कुरैश आदि कई जातियों का प्राचीन धर्म हिन्दू ही था। मैक्सिको में एक खुदाई के दौरान गणेश और लक्ष्मी की प्राचीन मूर्तियां पाई गईं थी। 'मैक्सिको' शब्द संस्कृत के 'मक्षिका' शब्द से आता है और मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। दूसरी ओर स्पेन में हजारों वर्ष पुराना एक मंदिर है जिस पर भगवान विष्णु की प्रतिमा अंकित है।

### इराक में भगवान श्रीराम और श्री हनुमानजी

अभी दो वर्ष पहले भारत से हजारों किलोमीटर दूर इराक में कुछ ऐसा हुआ है जिसने ये प्रमाण दिया है कि भगवान श्रीराम और उनके भक्त हनुमान जी की कथा सत्य है। हाल ही में मीडिया में

आई रिपोर्टों के मुताबिक़ इराक के सिलेमानिया इलाके में मौजूद बैनुला बाईपास के पास खुदाई में भगवान राम और हनुमान जी की दुर्लभ प्रतिमाएं पाई गयी हैं । इन प्रतिमाओं के पाए जाने की पुष्टि खुद इराक सरकार ने की है। भारत द्वारा इस मामले पर मांगी गयी जानकारी के जावब में इराक सरकार ने एक पत्र लिखकर इस बात की पुष्टि है। इतना ही नहीं इरान सरकार के पुरातत्व विभाग का दावा है कि ये प्रतिमाएं करीब 6 हजार साल पुरानी हैं। प्रतिमाओं के मिलने के बाद भारत सरकार ने भी इन प्रतिमाओं से जुड़ी और जानकारी प्राप्त करने की इच्छा जाहिर की है। इराक में भारतीय राजदूत प्रदीप सिंह राजपुरोहित की अगुआई में एक प्रतिनिधिमंडल ने उत्तर प्रदेश संस्कृति विभाग की एक शोध इकाई, अयोध्या शोध संस्थान के आग्रह पर यह कार्रवाई की है. एब्रिल वाणिज्यदूतावास में भारतीय राजनयिक चंद्रमौली कर्ण, यूनिवर्सिटी ऑफ सुलेमानिया और इराक में कुर्दिस्तानी गवर्नर ने भी इस अभियान में हिस्सा लिया। अयोध्या शोध संस्थान ने भी आधिकारिक रूप से कहा है कि बेलूला दर्रे में राम की तस्वीर के वास्तविक साक्ष्य मिले हैं, लेकिन इस प्रतिनिधिमंडल ने भारत और मेसोपोटामियाई संस्कृति में संबंध ढूंढने और विस्तृत अध्ययन करने के लिए चित्रात्मक साक्ष्य लिए गए हैं।

## 16 महाजनपद

महाभारत काल में अखंड भारत के मुख्यतः 16 महाजनपदों (कुरु, पंचाल, शूरसेन, वत्स, कोशल, मल्ल, काशी, अंग, मगध, वृज्जि, चेदि, मत्स्य, अश्मक, अवंति, गांधार और कंबोज) के अंतर्गत 200 से अधिक जनपद थे। दार्द, हूण, हुंजा, अम्बिस्ट आम्ब, पख्तू, कैकय, वाल्हीक बलख, अभिसार (राजौरी), कश्मीर, मद्र, यदु, तृसु, खांडव, सौवीर सौराष्ट्र, शल्य, यवन, किरात, निषाद, उशीनर, धनीप, कौशाम्बी, विदेही, अंग, प्राग्ज्योतिष (असम), घंग, मालव, कलिंग, कर्णाटक, पांडय, अनूप, विन्ध्य, मलय, द्रविड़, चोल, शिवि शिवस्थान-सीस्टान-सारा बलूच क्षेत्र, सिंध का निचला क्षेत्र दंडक महाराष्ट्र सुरभिपट्टन मैसूर, आंध्र, सिंहल, आभीर अहीर, तंवर, शिना, काक, पणि, चुलूक चालुक्य, सरोस्ट सरोटे, कक्कड़, खोखर, चिन्धा चिन्धड़, समेरा, कोकन, जांगल, शक, पुण्ड्र, ओड्र, क्षुद्रक, योधेय जोहिया, शूर, तक्षक व लोहड़ लगभग 200 जनपद से अधिक जनपदों का महाभारत में उल्लेख मिलता है। ग्रंथ बताते हैं कि म्लेच्छ और यवन को विदेशी माना जाता था। भारत में भी इनके कुछ क्षेत्र हो चले थे। हालांकि इन विदेशियों में भारत से बाहर जाकर बसे लोग ही अधिक थे। देखा जाए तो भारतीयों ने ही अरब और यूरोप के अधिकतर क्षेत्रों पर शासन करके अपने कुल, संस्कृति और धर्म को बढ़ाया था। उस काल में भारत दुनिया का सबसे आधुनिक देश था और सभी लोग यहां आकर बसने और व्यापार आदि करने के प्रति उत्सुक रहते थे। भारतीय लोगों ने भी दुनिया के कई हिस्सों में पहुंचकर वहां शासन की एक नए देश को गढ़ा है, इंडोनेशिया, सिंगापुर, मलेशिया, कंबोडिया, वियतनाम, थाईलैंड इसके बचे हुए उदाहरण है। भारत के ऐसे कई उपनिवेश थे जहां पर भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रचलन था।

## यवनाचार्य ऋषि गर्ग

ऋषि गर्ग को यवनाचार्य कहते थे। यह भी कहा जाता है कि अर्जुन की आदिवासी पत्नी उलूपी स्वयं अमेरिका की थी। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी कंदहार और पांडु की पत्नी माद्री ईरान के राजा सेल्यूकस (शल्य) की बहिन थी। ऐसे उल्लेख मिलता है कि एक बार मुनि वेद व्यास और उनके पुत्र शुकदेव आदि जो अमेरिका में थे। शुक ने पिता से कोई प्रश्न पूछा। व्यास जी इस बारे में चूंकि पहले बता चुके थे, अत उन्होंने उत्तर न देते हुए शुक को आदेश दिया कि शुक तुम मिथिला (नेपाल) जाओ और यही प्रश्न राजा जनक से पूछना। ऐसा वर्णन मिलता है कि शुक अमेरिका से नेपाल जाना पड़ा था। कहते हैं कि वे उस काल के हवाई मार्ग से निकले उसका विवरण एक सुन्दर श्लोक में है-

**'मेरोहर्रेश्च द्वे वर्षे हेमवँते ततः।**

**क्रमेणेव समागम्य भारतं वर्ष मासदत्।।**

**सदृष्टवा विविधान देशान चीन हूण निषेवितान।**

अर्थात शुकदेव अमेरिका से यूरोप (हरिवर्ष, हूण, होकर चीन और फिर मिथिला पहुंचे। पुराणों हरि बंदर को कहा है। वर्ष माने देश। बंदर लाल मुंह वाले होते हैं। यूरोपवासी के मुंह लाल होते हैं। अतःहरिवर्ष को यूरोप कहा है। हूणदेश हंगरी है यह शुकदेव के हवाई जहाज का मार्ग था। अमेरिकन महाद्वीप के बोलीविया (वर्तमान में पेरू और चिली) में हिन्दुओं ने प्राचीनकाल में अपनी बस्तियां बनाईं और कृषि का भी विकास किया। यहां के प्राचीन मंदिरों के द्वार पर विरोचन, सूर्य द्वार, चन्द्र द्वार, नाग आदि सब कुछ हिन्दू धर्म समान हैं। जम्बू द्वीप के वर्ण में अमेरिका का उल्लेख भी मिलता है। पारसी, यजीदी, पैगन, सबाईन, मुशरिक, कुरैश आदि प्रचीन जाति को हिन्दू धर्म की प्राचीन शाखा माना जाता है।

## भगवान गणेश , श्री राम और हनुमान की मूर्ति

अरब,ईरान,इराक,मिश्र,सीरिया,जॉर्डन सभी प्राचीन सनातन वैदिक हिन्दू ही थे। अरब में इस्लाम का कोई सबूत 1400 साल से पुराना नहीं है। इस्लाम का तो पूरा इतिहास ही 1400 साल पुराना है।अरब में ही 6000 साल पुराना हिन्दू धर्म का सबूत मौजूद है और ये खोज भी अरब के देश इराक में जाकर कोई हिन्दुओ ने नहीं बल्कि वही के मुस्लिम शोधकर्ताओं ने की है। अरब में खुदाई के दौरान गणेश जी की विशाल प्रतिमा जमीन से

निकलने के बाद इराक में मिली। भगवान् राम और हनुमान की 6000 साल पुरानी आकृति, इराक भले ही आज मुस्लिम देश हो, पर ये हमेशा से मुस्लिम देश नहीं रहा है। इराक का असल नाम 'मेसोपोटामिया' है, सऊदी अरब की तरह इराक में भी हिन्दू धर्म ही फैला हुआ था और उसका सबूत भी इराक में मिला है।

इस्लामिक इतिहासकारो को ध्यान से पढिये तो दिखेगा की इस्लाम सबसे पहले अतीत पर आकर्मण करता है।जो जमीन वह जीतता है सबसे पहले वहां की प्राचीन पुस्तको,मंदिरों,पूर्वजो की यादो को मिटाने का प्रयत्न करता रहा है।अक्सर आपने देखा और सुना होगा की कट्टरपंथी दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृतियों को तोड़ देते है, असल में ये ऐसा इसलिए किया जाता है ताकि दूसरे संस्कृति को मिटाया जा सके और झूठ फैलाया जा सके। साथ ही वे नबियों,पैगम्बरों के किस्से जमाने की कोशिश करने में लग जाते है उसका एक ही उद्देश्य होता है कि लोगो में बैठाया जा सके कि इस्लाम सबसे पुराना है। अब कोई सबूत ही नहीं छोड़ा जायेगा तो इस्लाम सबसे पुराना है कहने में आसानी होगी। इसी मकसद से दूसरे धर्म की मूर्तियों, आकृति को जिहादी तत्व तोड़ते है, और अक्सर उनपर मस्जिदें भी बना देते है। ध्वस्त करने का दूसरा उद्देश्य डर बैठाना होता है।जिससे हमेशा यह जताया जा सके की इस्लाम बहुत ताकतवर है उसके पैगम्बर से कोई देवता नही टकरा सकता।

इराक में भी जिहादी तत्वों ने दूसरे उपासकों के पूजा विग्रहों को तोडा। उन्हें नष्ट किया पर अब शोधकर्ताओं को इराक के सुलेमानिया में हिन्दू धर्म के प्रतिक भगवान् राम और हनुमान की आकृति मिली है।शोधकर्ताओं ने इस आकृति को 6000 साल पुरानी बताया है।यानि बनाने वालो ने इसे 6000 साल पहले इस सुलेमानिया में बनाया था, जबकि इस्लाम तो महज 1400 साल पुराना है। साफ़ होता है कि इराक में सनातन धर्म ही था।आकृति में साफ़ देखा जा सकता है की, एक पुरुष खड़े हैं जिनके हाथों में धनुष है, और उनके सामने एक वानर रूपी हनुमान हाथ जोड़े खड़े है। शोधकर्ताओं ने इसे हिन्दू धर्म के श्री राम और हनुमान के रूप में स्वीकार किया है, भारतीय ही नहीं अरबी मुस्लिम भी धर्मांतरित ही है, पर कहने को ये लोग कुछ भी कह सकते है।

## संस्कृत और संस्कृति

हालांकि सनातन संस्कृति और संस्कृत भाषा सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये थे लेकिन पश्चिमी शोधकर्ताओं की ही मान लिया जाय तब भी संस्कृत और कई प्राचीन भाषाओं के इतिहास के तथ्यों के अनुसार प्राचीन भारत में सनातन धर्म के इतिहास की शुरुआत ईसा से लगभग 13 हजार पूर्व हुई थी अर्थात आज से 15 हजार वर्ष पूर्व। इस पर विज्ञान ने भी शोध किया और वह भी इसे सच मानता है। जीवन का विकास भी सर्वप्रथम भारतीय प्रायद्वीप में हुआ, जो विश्व की सर्वप्रथम नदी है। यहां पूरे विश्व में डायनासोरों के सबसे प्राचीन अंडे एवं जीवाश्म प्राप्त हुए हैं। संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है तथा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। 'संस्कृत' का शाब्दिक अर्थ है 'परिपूर्ण भाषा'। संस्कृत से पहले दुनिया छोटी-छोटी, टूटी-फूटी बोलियों में बंटी थी जिनका कोई व्याकरण नहीं था और जिनका कोई भाषा कोष भी नहीं था। भाषा को लिपियों में लिखने का प्रचलन भारत में ही शुरू हुआ। भारत से इसे सुमेरियन, बेबीलोनीयन और यूनानी लोगों ने सीखा। ब्राह्मी और देवनागरी लिपियों से ही दुनियाभर की अन्य लिपियों का जन्म हुआ। ब्राह्मी लिपि एक प्राचीन लिपि है जिसे देवनागरी लिपि से भी प्राचीन माना जाता है। हड़प्पा संस्कृति के लोग इस लिपि का इस्तेमाल करते थे, तब संस्कृत भाषा को भी इसी लिपि में लिखा जाता था। जैन पौराणिक कथाओं में वर्णन है कि सभ्यता को मानवता तक लाने वाले पहले तीर्थंकर ऋषभदेव की एक बेटी थी जिसका नाम ब्राह्मी था। उसी ने इस लेखन की खोज की। प्राचीन दुनिया में सिंधु और सरस्वती नदी के किनारे बसी सभ्यता सबसे समृद्ध, सभ्य और बुद्धिमान थी। इसके कई प्रमाण मौजूद हैं। यह वर्तमान में अफगानिस्तान से भारत तक फैली थी।

प्राचीनकाल में जितनी विशाल नदी सिंधु थी उससे कहीं ज्यादा विशाल नदी सरस्वती थी। दुनिया का पहला धर्मग्रंथ सरस्वती नदी के किनारे बैठकर ही लिखा गया था।पुरातत्त्वविदों के अनुसार यह सभ्यता लगभग 9,000 ईसा पूर्व अस्तित्व में आई थी, 3,000 ईसापूर्व उसने स्वर्ण युग देखा और लगभग 1800 ईसा पूर्व आते-आते किसी भयानक प्राकृतिक आपदा के कारण यह लुप्त हो गया। एक ओर जहां सरस्वती नदी लुप्त हो गई वहीं दूसरी ओर इस क्षेत्र के लोगों ने पश्चिम की ओर पलायन

कर दिया।

सैकड़ों हजार वर्ष पूर्व पूरी दुनिया के लोग कबीले, समुदाय, घुमंतू वनवासी आदि में रहकर जीवन-यापन करते थे। उनके पास न तो कोई स्पष्ट शासन व्यवस्था थी और न ही कोई सामाजिक व्यवस्था। परिवार, संस्कार और धर्म की समझ तो बिलकुल नहीं थी। ऐसे में केवल भारतीय हिमालयन क्षेत्र में कुछ मुट्ठीभर लोग थे, जो इस संबंध में सोचते थे। उन्होंने ही वेद को सुना और उसे मानव समाज को सुनाया। उल्लेखनीय है कि प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज कबीले में नहीं रहा। वह एक वृहत्तर और विशेष समुदाय में ही रहा।

संपूर्ण धरती पर हिन्दू वैदिक धर्म ने ही लोगों को सभ्य बनाने के लिए अलग-अलग क्षेत्रों में धार्मिक विचारधारा की नए-नए रूप में स्थापना की थी । आज दुनियाभर की धार्मिक संस्कृति और समाज में हिन्दू धर्म की झलक देखी जा सकती है चाहे वह यहूदी धर्म हो, पारसी धर्म हो या ईसाई-इस्लाम धर्म हो। यदि आधुनिक इतिहासकारों और पश्चिमी शोध को भी देखें तो पता चलता है कि ईसा से 2300-2150 वर्ष पूर्व सुमेरिया, 2000-400 वर्ष पूर्व बेबिलोनिया, 2000-250 ईसा पूर्व ईरान,2000-150 ईसा पूर्व मिस्र (इजिप्ट), 1450-500 ईसा पूर्व असीरिया, 1450-150 ईसा पूर्व ग्रीस (यूनान), 800-500 ईसा पूर्व रोम की सभ्यताएं विद्यमान थीं।

इन सभी से भी पूर्व अर्थात आज से 5000 वर्ष पहले महाभारत का युद्ध लड़ा गया था।महाभारत से भी पहले 7300 ईसापूर्व अर्थात आज से 7300+2000=9300 साल पहले रामायण का रचनाकाल प्रमाणित हो चुका है। अब चूँकि महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में उससे भी पहले लिखी गई मनुस्मृति का उल्लेख आया है तो आइये अब जानते हैं रामायण से भी प्राचीन मनुस्मृति कब लिखी गयी होगी। रामायण के किष्किन्धा काण्ड में श्री राम अत्याचारी बाली को घायल कर उन्हें दंड देने के लिए मनुस्मृति के श्लोकों का उल्लेख करते हुए उसे अनुजभार्याभिमर्श का दोषी बताते हुए कहते हैं- मैं तुझे यथोचित दंड कैसे ना देता ?

**श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्र वत्सलौ।।**
**गृहीतौ धर्म कुशलैः तथा तत् चरितम् मयाअ।।**

**वाल्मीकि 4-18-30**

**राजभिः धृत दण्डाः च कृत्वा पापानि मानवाः।**
**निर्मलाः स्वर्गम् आयान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।।**

**वाल्मीकि 4-18-31**

**शसनात् वा अपि मोक्षात् वा स्तेनः पापात् प्रमुच्यते।**
**राजा तु अशासन् पापस्य तद् आप्नोति किल्बिषम्।**

**वाल्मीकि 4-18-32**

## मनुस्मृति

उपरोक्त श्लोक 30 में मनु का नाम आया है और श्लोक 31 , 32 भी मनुस्मृति के ही हैं एवं उपरोक्त सभी श्लोक मनु अध्याय 8 के है जिनकी संख्या कुल्लूकभट्ट कि टीकावली में 318 व 319 है। अतः यह सिद्ध हुआ कि श्लोकबद्ध मनुस्मृति जो महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में अनेक स्थान पर आयी है वह मनुस्मृति रामायणकाल (9300 साल) के भी पहले विद्यमान थी ।

अब विदेशी प्रमाणों के आधार पर ही जान लेते हैं कि रामायण से भी पहले की मनुस्मृति कितनी प्राचीन है।सन 1932 में जापान ने बम विस्फोट द्वारा चीन की ऐतिहासिक दीवार को तोड़ा तो उसमे से एक लोहे का ट्रंक मिला जिसमे चीनी भाषा की प्राचीन पांडुलिपियां भरी थी । बताया जा रहा है कि वे हस्तलेख Sir Augustus Fritz George के हाथ लग गयीं। वह उन्हें लंदन ले गये और ब्रिटिश म्युजियम में रख दिया । उन हस्तलेखों को Prof. Anthony Graeme ने चीनी विद्वानो से पढ़वाया। चीनी भाषा के उन हस्तलेखों में से एक में लिखा है -

'मनु का धर्मशास्त्र भारत में सर्वाधिक मान्य है जो वैदिकसंस्कृत में लिखा है और दस हजार वर्ष से अधिक पुराना है' तथा इसमें मनु के श्लोकों कि संख्या 630 भी बताई गई है।

यही विवरण मोटवानी कि पुस्तक 'मनु धर्मशास्त्र :ए सोशियोलॉजिकल एंड हिस्टोरिकल स्टडीज' पेज 232 पर भी दिया है ।इसके अतिरिक्त R.P. Pathak कि Education In The Emerging India में भी पेज 148 पर है।अब देखें चीन की दीवार के बनने का समय लगभग 220–206 BC है अर्थात लिखने वाले ने कम से कम 220BC से पूर्व ही मनु के बारे में अपने हस्तलेख में लिखा 220+10000 =10220 ईसा पूर्व

यानी आज से कम से कम 12,220 वर्ष पूर्व तक भारत में मनुस्मृति पढ़ने के लिए उपलब्ध थी ।

## वेद

मनुस्मृति में सैकड़ों स्थानों पर वेदों का उल्लेख आया है। अर्थात वेद मनुस्मृति से भी पहले लिखे गये। अब हिन्दू धर्म के आधार वेदों की प्राचीनता जानते हैं। वेदों का रचनाकाल इतना प्राचीन है कि इसके बारे में सही-सही किसी को ज्ञात नहीं है। सनातन मान्यता के अनुसार वेद सृष्टि के साथ ही अस्तित्व में आये। पाश्चात्य विद्वान वेदों के सबसे प्राचीन मिले पांडुलिपियों के हिसाब से वेदों के रचनाकाल के बारे में अनुमान लगाते हैं। जो अत्यंत हास्यास्पद है। क्योंकि वेद लिखे जाने से पहले हजारों सालों तक पीढ़ी दर पीढ़ी सुनाए जाते थे। इसीलिए वेदों को 'श्रुति' भी कहा जाता है।

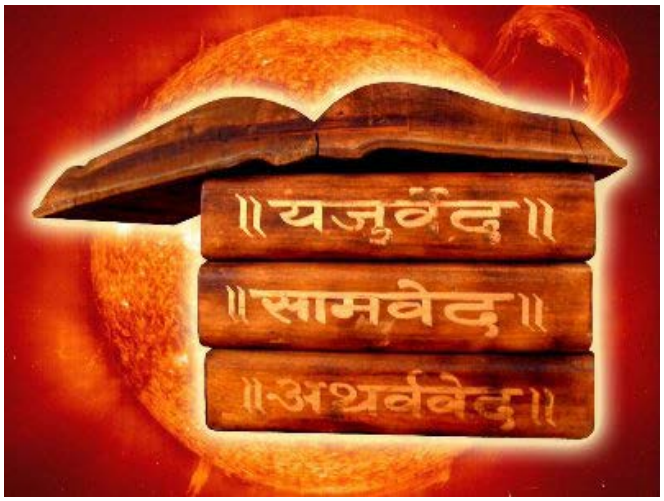


उस काल में भोजपत्रों पर लिखा जाता था अतः यदि उस कालखण्ड में वेदों को हस्तलिखित भी किया गया होगा तब भी आज हजारों साल बाद उन भोजपत्रों का मिलना असम्भव है। फिर भी वेदों पर सबसे अधिक शोध करने वाले स्वामी दयानंद जी ने अपने ग्रंथों में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति का विस्तार से वर्णन किया हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के पुरुष सूक्त (ऋक 10.90, यजु 31 , अथर्व 19.6) में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है कि परम पुरुष परमात्मा ने भूमि उत्पन्न की, चंद्रमा और सूर्य उत्पन्न किये, भूमि पर भांति भांति के अन्न उत्पन्न किये,पशु पक्षी आदि उत्पन्न किये। उन्ही अनंत शक्तिशाली परम पुरुष ने मनुष्यों को उत्पन्न किया और उनके कल्याण के लिए वेदों का उपदेश दिया।

उन्होंने शतपथ ब्राह्मण से एक उद्धरण दिया और बताया-

**'अग्नेर्वा ऋग्वेदो जायते वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।।**

प्रथम सृष्टि की आदि में परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन तीनों ऋषियों की आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया।' (सत्यार्थप्रकाश, सप्तमसमुल्लास, पृष्ठ 135)

इसलिए वेदों की उत्पत्ति का काल मनुष्य जाति की उत्पत्ति के साथ ही माना जाता है। स्वामी दयानंद की इस मान्यता का समर्थन ऋषि मनु और ऋषि वेदव्यास भी करते हैं। परमात्मा ने सृष्टी के आरंभ में वेदों के शब्दों से ही सबवस्तुओं और प्राणियों के नाम और कर्म तथा लौकिक व्यवस्थाओं की रचना की हैं. (मनुस्मृति 1.21)

स्वयंभू परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में वेद रूप नित्य दिव्यवाणी का प्रकाश किया जिससे मनुष्यों के सब व्यवहार सिद्ध होते हैं (वेद व्यास,महाभारत शांति पर्व 232/24)

कुल मिलाकर वेदों, सनातन धर्म एवं सनातनी परम्परा की शुरूआत कब हुई, यह अभी भी एक शोध का विषय है। इसका मतलब कि हजारों वर्ष ईसा पूर्व भारत में एक पूर्ण विकसित सभ्यता थी। और यहाँ के लोग पढ़ना-लिखना भी जानते थे। इसके बाद भारतीय संस्कृति का प्रकाश धीरे-धीरे पूरे विश्व में फैलने लगा। तब भारत का 'धर्म' दुनियाभर में अलग-अलग नामों से प्रचलित था। अरब और अफ्रीका में जहां सामी, सबाईन, मुशरिक, यजीदी, अश्शूर, तुर्क, हित्ती, कुर्द, पैगन आदि इस धर्म के मानने वाले समाज थे तो रोम, रूस, चीन व यूनान के प्राचीन समाज के लोग सभी किसी न किसी रूप में हिन्दू धर्म का पालन करते थे। फिर ईसाई और बाद में दुनियाँ की कई सभ्यताओं एवं संस्कृतियों को नष्ट करने वाले धर्म इस्लाम ने इन्हें विलुप्त सा कर दिया।

मैक्सिको में ऐसे हजारों प्रमाण मिलते हैं जिनसे यह सिद्ध होता है। जीसस क्राइस्ट्स से बहुत पहले वहां पर हिन्दू धर्म प्रचलित था। अफ्रीका में 6,000 वर्ष पुराना एक शिव मंदिर पाया गया और चीन, इंडोनेशिया, मलेशिया, लाओस, जापान में हजारों वर्ष पुरानी विष्णु, राम और हनुमान की प्रतिमाएं मिलना इस बात का प्रमाण है कि सनातन वैदिक हिन्दू धर्म संपूर्ण धरती पर था।

उदाहरण के तौर पर एरिक वॉन अपनी बेस्ट सेलर पुस्तक 'चैरियट्स ऑफ गॉड्स' में लिखते हैं -

विश्व की सबसे प्राचीन सुमेरियन सभ्यता(2300 B.C.) से भी प्राचीन लगभग 5,000 वर्ष पुराने महाभारत के तत्कालीन कालखंड में उन्नत सामाजिक व्यवस्था, उन्नत शासन प्रणाली, उन्नत भाषा आदि का विस्तारित विवरण एवं उक्त कालखंड के योद्धाओं द्वारा आज के अत्याधुनिक अस्त्र-शस्त्रों के समान ही अनेक शस्त्रों का प्रयोग केवल कल्पना मात्र नहीं हो सकता। वे किसी ऐसे अस्त्र के बारे में कैसे जानते थे जिसे चलाने से 12 साल तक उस धरती पर सूखा पड़ जाता, ऐसा कोई अस्त्र जो

इतना शक्तिशाली हो कि वह माताओं के गर्भ में पलने वाले शिशु को भी मार सके? इसका अर्थ है कि ऐसा कुछ न कुछ तो था जिसका ज्ञान आगे नहीं बढ़ाया गया अथवा लिपिबद्ध नहीं हुआ और गुम हो गया।

## प्राचीन संस्कृति में मनोरंजन

प्राचीन भारत बहुत ही समृद्ध और सभ्य देश था, जहां हर तरह के अस्त्र शस्त्र प्रयोग किये जाते थे, तो वहीं मानव के मनोरंजन के भरपूर साधन भी थे। ऐसा कोई खेल या मनोरंजन का साधन नहीं है जिसका आविष्कार भारत में न हुआ हो। आज शेष विश्व में जितनी भी संस्कृतियाँ, सामाजिक व्यवस्थाएँ एवं धार्मिक मान्यताएँ प्रचलित हैं; प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहन अध्ययन करने से ये प्रमाणित हो जाता है कि ये सभी भारत में प्रचलित हिन्दू धर्म एवं संस्कृति से पूरी तरह प्रभावित हैं। कई विश्व विख्यात विद्वानों एवं वैज्ञानिक शोधों ने ये प्रमाणित भी किया है।

## पानी के जहाज

संस्कृत और अन्य भाषाओं के ग्रंथों में इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि भारतीय लोग समुद्र में जहाज द्वारा अरब और अन्य देशों की यात्रा करते थे और सनातन धर्म एवं सभ्यता का परिचय कराते थे। वहीं किसी भी ग्रंथ एवं उल्लेखों में अपने धर्म एवं सभ्यता को प्रचारित करने में किसी भी देश या मानव समूहों में किसी भी प्रकार की जबरदस्ती एवं बलप्रयोग का उल्लेख नहीं मिलता। प्राचीन भारतायों का लम्बी यात्राएं कर विश्व के विभिन्न स्थानों पर जाना केवलमात्र शेष विश्व को सभ्यता से परिचय कराना था।

## वायुयान

विमानों से यात्रा करने की कई कहानियां भारतीय ग्रंथों में भरी पड़ी हैं जो इतनी अधिक बार उल्लेखित हुई हैं कि इसे असत्य नहीं माना जा सकता। यहीं नहीं, कई ऐसे ऋषि और मुनि भी थे, जो योगबल से अंतरिक्ष में दूसरे ग्रहों पर जाकर पुनः धरती पर लौट आते थे।वर्तमान समय में भारत की इस प्राचीन तकनीक और वैभव का खुलासा कोलकाता संस्कृत कॉलेज के संस्कृत प्रोफेसर दिलीप कुमार कांजीलाल ने 1979 में एंशियंट एस्ट्रोनट सोसाइटी (Ancient Astronaut Society) की म्युनिख (जर्मनी) में संपन्न छठी कांग्रेस के दौरान अपने एक शोध पत्र से किया। जिससे विश्व आश्चर्यचकित हो गया था। उन्होंने उड़ सकने वाले प्राचीन भारतीय विमानों के बारे में एक उद्बोधन दिया और पर्चा प्रस्तुत किया।

## संगीत और वाद्य यंत्र

संगीत और वाद्ययंत्रों का अविष्कार भारत में ही हुआ है। अत्याधुनिक पाश्चात्य वाद्ययंत्र इन्हीं के रूपान्तर हैं। हिन्दू धर्म का नृत्य, कला, योग और संगीत से गहरा नाता रहा है। हिन्दू धर्म मानता है कि ध्वनि और शुद्ध प्रकाश से ही ब्रह्मांड की रचना हुई है। आत्मा इस जगत का कारण है। चारों वेद, स्मृति, पुराण और गीता आदि धार्मिक ग्रंथों में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को साधने के हजारों हजार उपाय बताए गए हैं। उन उपायों में से एक है संगीत। संगीत की कोई भाषा नहीं होती। संगीत आत्मा के सबसे ज्यादा नजदीक माना जाता था।

आज भी विग्रहों में हिन्दुओं के लगभग सभी देवी और देवताओं केपास अपना एक अलग वाद्य यंत्र है। संगीत का सर्वप्रथम ग्रंथ चार वेदों में से एक सामवेद ही है। इसी के आधार पर भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र लिखा और बाद में संगीत रत्नाकर, अभिनव राग मंजरी लिखा गया। दुनियाभर के संगीत के ग्रंथ सामवेद से प्रेरित हैं।

प्राचीन भारतीय नृत्य शैली से ही दुनियाभर की नृत्य शैलियां विकसित हुई है। भारतीय नृत्य मनोरंजन के लिए नहीं बना था। भारतीय नृत्य ध्यान की एक विधि के समान कार्य करता है। मूलतः यह प्राचीन हिन्दुओं द्वारा निर्मित एक योग क्रिया है।

सामवेद में संगीत के साथ साथ नृत्य का भी उल्लेख मिलता है। हड़प्पा सभ्यता में नृत्य करती हुई लड़की की मूर्ति पाई गई है। भरत मुनि का नाट्य शास्त्र नृत्यकला का सबसे प्रथम व प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है। इसको पंचवेद भी कहा जाता है। यही नहीं सृष्टि के आरम्भिक हिन्दू ग्रंथों और पुराणों में भी शिव और पार्वती के नृत्य का वर्णन मिलता है।

## ध्वनि की खोज

भारतीय ऋषियों ने ऐसी सैकड़ों ध्वनियों को खोजा, जो प्रकृति में पहले से ही विद्यमान है। उन ध्वनियों के आधार पर ही उन्होंने मंत्रों की रचना की, संस्कृत भाषा की रचना की और ध्यान एवं स्वास्थ्य में लाभदायक ध्यान ध्वनियों की रचना की। इसके अलावा उन्होंने ध्वनि विज्ञान को अच्छे से समझकर इसके माध्यम से शास्त्रों की रचना की और प्रकृति को संचालित करने वाली ध्वनियों की खोज भी की। आज का विज्ञान अभी भी संगीत और ध्वनियों के महत्व और प्रभाव की खोज में लगा हुआ है, लेकिन ऋषि-मुनियों से अच्छा कोई भी संगीत के रहस्य और उसके विज्ञान को नहीं जान पाया।

## ज्ञान, कला, संस्कृति, शिक्षा

भारत में प्राचीनकाल से ही ज्ञान को अत्यधिक महत्व

दिया जाता था। कला, विज्ञान, गणित और ऐसे अनगिनत क्षेत्र हैं जिनमें भारतीय योगदान अनुपम है। आधुनिक युग के ऐसे बहुत से आविष्कार हैं, जो प्राचीन भारतीय शोधों के निष्कर्षों पर आधारित हैं।प्राचीन भारतीयों ने एक ओर जहां पिरामिडनुमा मंदिर बनाए तो दूसरी ओर स्तूपनुमा मंदिर बनाकर दुनिया को चमत्कृत कर दिया। आज दुनियाभर के धर्म के प्रार्थना स्थल इसी शैली में बनते हैं। तब हिन्दू मंदिरों को देखना सबसे अद्भुत माना जाता था। मौर्य, गुप्त और विजयनगरम साम्राज्य के दौरान बने हिन्दू मंदिरों की स्थापत्य कला को देखकर हर कोई दांतों तले अंगुली दबाए बिना नहीं रह पाता। अजंता-एलोरा की गुफाएं हों या वहां का विष्णु मंदिर। कोणार्क का सूर्य मंदिर हो या जगन्नाथ मंदिर या कंबोडिया के अंकोरवाट का मंदिर हो या थाईलैंड के मंदिर, उक्त मंदिरों से पता चलता है कि प्राचीन भारत में किस तरह के मंदिर बनते होंगे। समुद्र में डूबी कृष्ण की द्वारिका के अवशेषों की जांच से पता चलता है कि आज से 5,000 वर्ष पहले जब पूरी दुनियाँ जंगलों में नंगी घूमती थी तब भी हिन्दुओं के मंदिर और महल अत्यंत भव्य होते थे और हिन्दू सभ्यता, संस्कृति एवं ज्ञान से परिपूर्ण । उल्लेखों के अनुसार उनमें प्राचीन भारतीय ज्ञान-विज्ञान, कला, संस्कृति, दर्शन, खगोलविज्ञान आदि से सम्बन्धित इतनी अधिक संख्या में पुस्तकें थीं जो कई महीनों तक जलती रहीं और विश्व ने मानव-सभ्यता की इस लिपिबद्ध अनमोल धरोहर को सदा के लिए खो दिया। इसके साथ ही दुनियाँ की सबसे प्राचीन, सभ्य एवं समृद्ध हिन्दू सभ्यता का पराभव काल आरम्भ हुआ जो कालांतर में मुगल लुटेरों से लेकर अंग्रेजों के शासनकाल तक चलता रहा।

आज देश के विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चे वामपंथी इतिहासकारों के द्वारा लिखा गया भारत का नकली इतिहास पढ़ते हैं जिसमें उन्हें बताया जाता है मानों केवल मुगलों के शासन में ही भारत का इतिहास निहित है। उसके पहले का स्वर्णिम काल केवल मनगढ़ंत बातें हैं। आज मैकाले की शिक्षा पद्धति के कारण छात्र अपने ही अतीत से दूर हो गये हैं, एवं अपनी ही संस्कृति का उपहास करते हैं। परन्तु अब झूठ से पर्दा उठने लगा है। अब आशा बँधने लगी है कि भारत अपने खोये गौरव को पुनः प्राप्त करेगा। यह प्रामाणिक है कि चीन, रूस, अमेरिका, इंडोनेशिया,कंबोडिया, वियतनाम, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैंड,फिलीपींस और जर्मनी से लेकर धरती के कोने कोने में भगवान शिव, भगवान गणेश,भगवान राम, श्री हनुमान जी समेत अनेक सनातन वैदिक हिन्दू देवी देवताओं के प्राचीन विग्रह मिल रहे हैं। स्वाभाविक है कि यह प्राचीनता का वैभव ही विश्व मे शांति का वाहक बनेगा।

।। नारायण।।

## सन्यासी और कर्मयोगी के पांच संयम

# सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह

संजय राय, 'शेरपुरिया'

**जीवन मे संकल्प महत्वपूर्ण है। संकल्प से ही शक्ति का संधान संभव है। यह संकल्प ही मनुष्य को क्रियाशील और प्रगतिगामी बनाता है। हमारी संस्कृति वस्तुतः संकल्प की संस्कृति है और यह संकल्प ही ही हमारी ज्ञान परंपरा का आधार है। सन्यासी शब्द सुनते ही हमारे मन में भगवे कपडे वाला, लम्बे दाढ़ी-बाल वाला चहेरा ही नजर आता है। लेकिन भगवद गीता के अनुसार सन्यासी कपडे या चहेरे से नहीं, पर गुणों और संयम से बन सकते है। अगर हम कपडे सन्यासी के पहनकर हमारी इन्द्रियों पर काबू नहीं पा सकते, तो कपडे का कोई महत्त्व नहीं है, अगर हमें धन-दौलत-गाड़ी-बंग्ला से प्यार है तो सन्यासी होने का कोई महत्त्व नहीं है।**

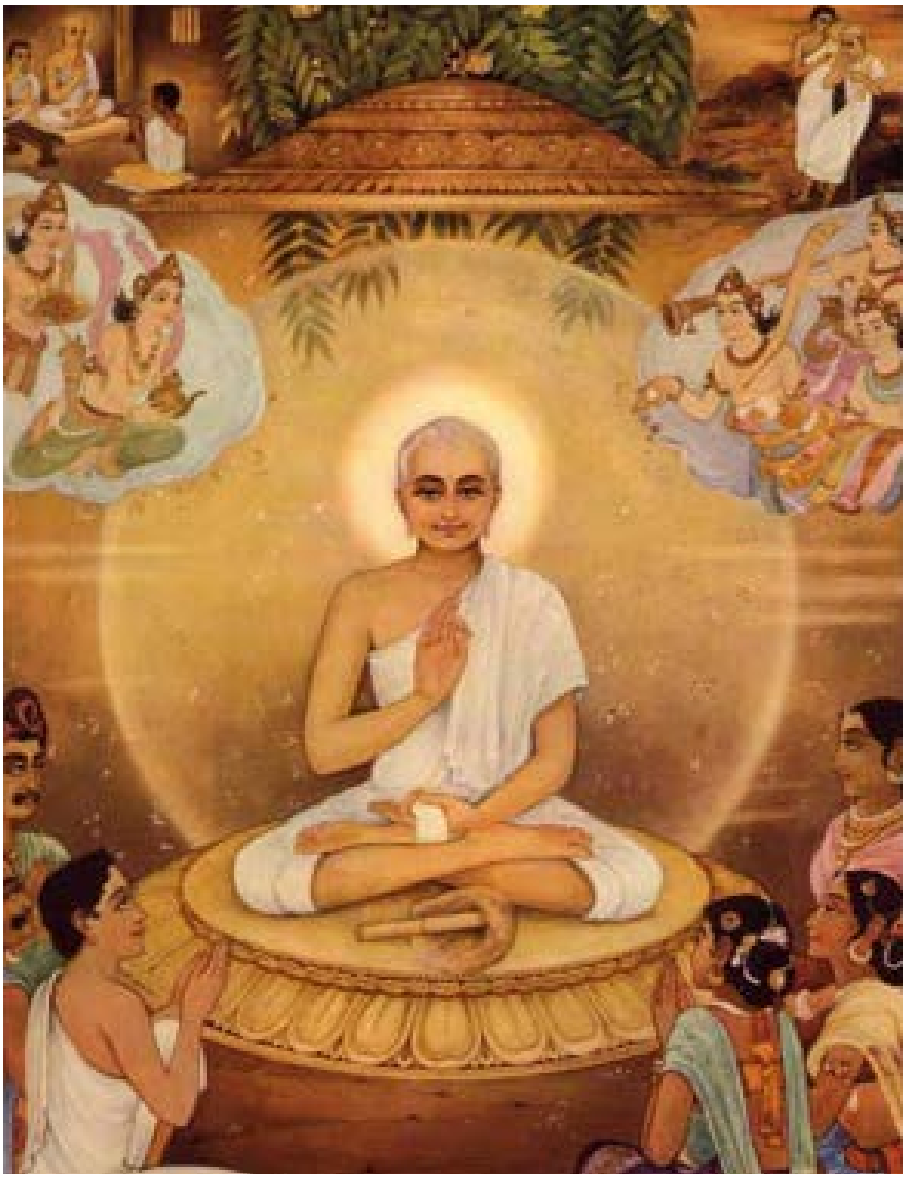

> अगर कोई अपने कर्तव्यों को छोड़ देता है, तो मन को शुद्ध करना बहुत मुश्किल है; और मन की शुद्धता के बिना, सच्चा सन्यास हासिल करना संभव ही नहीं है। कहने का अर्थ यह है, हिमालय की गुफा में रहते हुए योगी को भले ही ऐसा लगे कि उसने त्याग कर दिया है, लेकिन उसके त्याग की सत्यता का पता तब चलता है जब वह सांसारिक जीवन के बीच आता है।



*लेखक प्रखर राष्ट्रवादी सांस्कृतिक चिंतक एवं समाजसेवी हैं।*

सन्यासी की यात्रा ही संयम है, यह बात को भगवद गीता ने महोर लगाईं है और यहाँ तक कहा की, इसके लिए साधू होना जरुरी नहीं है क्योकि संयम और स्थितप्रज्ञ होने से सांसारिक व्यक्ति भी भगवद प्राप्ति कर सकता है। बात आसानी से नहीं हजम होने वाली है लेकिन भगवद गीता से सिध्ध है।

अध्याय 5 में श्री कृष्ण संन्यास कर्मयोग की बात करते हैं और सन्यास के बारे में गलतफहमी को दूर करते हैं। उनके अनुसार यह कोई बाहरी जीवन शैली नहीं (जैसे कि बहुत ज्यादा स्वैच्छिक तपस्या के लिए धीरज रखना), बल्कि, यह व्यक्तिगत रवैया और आंतरिक स्वभाव है, जो वास्तविक संन्यास उत्पन्न करता है। भारत में प्राचीन काल से ही ऐसे व्यक्ति और समूह रहे हैं जो आध्यात्मिक उत्थान के लिए त्याग (संन्यास) को काफी महत्व देते हैं। पर सच्चा सन्यास सांसारिक कर्मयोग में निहित है। सन्यास के अभ्यास के कई प्रकार और इसके चरम सीमा तक पहुंचने के कई स्तर हो सकते है। कृष्ण कहते हैं, त्याग की इच्छा ही भगवान व् सर्वोच्च को जानना और स्वीकार करना है, यही सभी कुछ का वास्तविक 'आनंद' है। इस त्याग की वृत्ति में जीना ही सन्यास कर्म योग है।

जैसा कि अध्याय 3 में, और फिर अध्याय 5 में अर्जुन कृष्ण के अब तक के बातों से लगता है भ्रम बरक़रार है। तो उनके यह प्रश्न कि, क्या उसे कर्म का पूरी तरह त्याग कर देना चाहिए या कर्मयोग करना चाहिए? इसपर कृष्ण 7वे श्लोक में कहते हैं यह एक झूठा भ्रम है। योग के बिना त्याग अपने आप में परेशानी लाता है, जबकि योग में लगा हुआ सन्यासी प्रवृति के लोग शीघ्र ही परम आत्मा को प्राप्त कर लेता है। उस अवस्था में, योगी को लगता है, 'मैं कुछ भी नहीं करता,' जबकि उसका शरीर कई तरह से कार्य करता है जैसे - देखना, सुनना, छूना, सूंघना, खाना, चलना, सोना, सांस लेना, बोलना, छोड़ना, पकड़ना, या पलक झपकना, इत्यादि। योगी जन इस समझ को बनाए रख सकते हैं कि ये सभी शारीरिक कार्य केवल इंद्रियों की वस्तुओं के साथ बातचीत हैं।

पतंजलि द्वारा दिए गए शास्त्रीय योग प्रणाली और संन्यास-योग की तुलना अपरिग्रह अर्थात कोई भी वस्तु संचित ना करना से किया गया है। इसके अनुसार सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, यह पांच सयम हैं। यही पांच महाव्रत हैं, जितना पालन करते रहने से इनका प्रभाव होने लगता है। इस प्रकार संन्यास-योग का एक महत्वपूर्ण सामाजिक आयाम है जो सामाजिक सद्भाव की प्राप्ति के लिए अत्यधिक अनुकूल है। अध्याय 5, श्लोक 6 में कहा गया है:

**संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।**
**योगयुक्तो मुनिब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।।**

अर्थातः कर्म संन्यास की भक्ति में कर्म किए बिना परम तत्व को प्राप्त करना मुश्किल है, लेकिन कर्म योग में निपुण ऋषि जन जल्दी ही सर्वोच्च को प्राप्त कर लेता है। इस श्लोक में श्रीकृण ने कर्मयोग पर बल दिया है। उनके अनुसार संसार में व्यक्ति को अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए धीरे-धीरे क्रोध, लोभ और कामना से ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए और इसे अपनी आदत में शामिल कर लेना चाहिए, पर अपने कर्म को प्रधानता देनी चाहिए। अगर कोई अपने कर्तव्यों को छोड़ देता है, तो मन को शुद्ध करना बहुत मुश्किल है; और मन की शुद्धता के बिना, सच्चा सन्यास हासिल करना संभव ही नहीं है। कहने का अर्थ यह है, हिमालय की गुफा में रहते हुए योगी को भले ही ऐसा लगे कि उसने त्याग कर दिया है, लेकिन उसके त्याग की सत्यता का पता तब चलता है जब वह सांसारिक जीवन के बीच आता है। उदाहरण के रूप में एक साधु बारह वर्षों तक पहाड़ों में तपस्या की और जब वह कुंभ के मेले में हरिद्वार आए तो मेले की भागदौड़ में किसी ने गलती से अपना जूता साधु के नंगे पैर पर रख दिया। साधु गुस्से में चिल्लाया, 'क्या तुम अंधे हो? नहीं देख सकते कि तुम कहाँ जा रहे हो?' बाद में उसने क्रोध को अपने ऊपर हावी होने देने के लिए पश्चाताप किया। मतलब शहर में एक दिन रहने से पहाड़ों में बारह वर्ष की तपस्या धुल गई! इसिलिए कहा गया है संसार वह अखाड़ा है जहां हमारे त्याग की परीक्षा होती है। इसे समझने के लिए कुछ और विन्दुओं पर विचार करने होंगे, जैसे दुनिया में इतने कम पीएचडी क्यों हैं? क्योंकि पीएचडी हासिल करने के लिए एक निश्चित के जीवन शैली की आवश्यकता होती है। इसके लिए उनका अधिकांश जीवन एक प्रयोगशाला में बिताने के लिए तैयार रहना पड़ता है। अपने प्रयोग को सही करने के लिए जो करना पड़ता है वह तो करना ही पड़ता है। उन्हें कई वर्षों तक अपने छोटे से वजीफे पर गुजारा करना पड़ता है। और यह सब मानव जाति को लाभ पहुंचाने वाली किसी चीज़ की खोज के एकमात्र उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसी प्रकार बहुत से लोग अपनी सांसारिक गतिविधियों को इतना कम नहीं कर सकते हैं कि वे एक शिक्षक से ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक आश्रम में चले जाएं। हम में से अधिकांश के लिए, हमारी इच्छाओं का खिंचाव इतना मजबूत है कि वे दुनियादारी में ही लगे रहते है। इसलिए मुक्ति हमारे कर्मों से आनी है, त्याग से नहीं। पर श्री कृष्ण का कहना है ऐसे ही कर्म नहीं करने चाहिए। कर्म का उद्देश्य माइने रखता है। कर्मयोग एक विचारशील प्रक्रिया है, जहां कोई कार्य करने से पहले सोचता है। आध्यात्मिक रूप से आगे बढ़ने में सबसे बड़ी बाधा हमारा अज्ञान का अहंकार है। और यह स्वार्थी इच्छाएँ पैदा करता है जो हमें भौतिक दुनिया की ओर ले जाती है। इसलिए जब हम सोच-समझकर कर्म करते हैं, दूसरे शब्दों में, जब हम यह सुनिश्चित करते हैं कि परिणाम के प्रति लगाव के बिना हमारे कार्य किए जा रहे हैं, तो हमारी स्वार्थी इच्छाएं धीरे-धीरे समाप्त हो जाती हैं। हम सभी अपने स्वभाव से काम करने के लिए या कर्म के लिए

प्रेरित होते हैं। देखिए अर्जुन एक योद्धा था, और अगर उसने बिना सोचे समझे अपने कर्तव्य का त्याग कर दिया होता, तो वह जंगल की ओर चला जाता, उसका स्वभाव उसे वहाँ भी काम करने के लिए मजबूर करता। अब चुकी वह स्वाभाव से राजघराने से था तो शायद कुछ कबीलों को इकट्ठा करता और खुद को अपना राजा घोषित कर देता। पर ईश्वर की अनुकम्पा से उसने यह किया की आज संसार याद् करता है। परमेश्वर की सेवा में उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और प्रतिभाओं का उपयोग अधिक फलदायी सावित हुआ। इसलिए श्री कृष्ण ने उसे निर्देश दिया, 'लड़ना जारी रखो, लेकिन उद्देश्य में बदलाव लेकर आने कर्म के फल की इच्छा का त्याग करो और अपने कर्म को ईश्वर को समर्पित करो। अर्जुन पहले तो इस युद्ध के मैदान में एक राज्य को बचाने के अनुमान से आए थे। पर अब अपनी सेवा निःस्वार्थ भाव से कर्म को भगवान को समर्पित कर विजय प्राप्त की और मन को शुद्ध कर परम आत्मा में विलीन हो गए। इस तरह, किसी भी व्यक्ति को स्वाभाविक रूप से मन को शुद्ध करने के लिए भीतर से सच्चा त्याग की इच्छा हासिल करने होंगे। जैसे एक कोमल और कच्चा फल उस पेड़ से चिपका रहता है जो उसे पालता है। लेकिन वही फल जब पूरी तरह से पक जाता है तो अपने पालने वाले से संबंध तोड़ लेता है। इसी प्रकार भौतिक अस्तित्व से कर्मयोगी को वह अनुभव प्राप्त होता है जो परिपक्व होकर ज्ञान में बदल जाता है। जिस प्रकार कड़ी मेहनत करने वालों के लिए ही गहरी नींद संभव है, उसी तरह गहरा ध्यान उन्हें आता है जिन्होंने कर्म-योग के माध्यम से अपने मन को शुद्ध किया है। इसी अध्याय के पांचवें श्लोक में कहा गया है की.....

**यत्साङ्ख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।**
**एकं साङ्ख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ।।**

मतलब की कर्म सन्यास से जो सर्वोच्च स्थिति प्राप्त होती है वही भक्ति में कार्य करने से प्राप्त होती है। इसलिए, जो लोग कर्म संन्यास और कर्म योग को एक समान देखते हैं, वे वास्तव में चीजों को वैसे ही देखते हैं जैसे वे हैं। कहने का अर्थ है मन की भावना महत्वपूर्ण है, व्यक्ति के बहरी क्रियाकलाप नहीं। कोई वृंदावन की पावन भूमि में रहते हुए अगर मन कोलकाता में रसगुल्ले खाने पर विचार करता है, तो वह वास्तव में कोलकाता रह रहा है। इसके विपरीत, यदि कोई कोलकाता में है और मन को वृंदावन के दिव्य भगवान में लीन रखता है, तो उसे वृन्दावन में ही रहने और भगवत भक्ति का लाभ मिलेगा। वैदिक शास्त्र कहते हैं मन एव मनुष्ट्यं करनाः बंध मोक्षयोः अर्थात 'मन बंधन का कारण है, और मन मुक्ति का कारण है।' कि हमारी चेतना का स्तर हमारे मन की स्थिति से निर्धारित होते है। कहने का अर्थ है जिन लोगों के पास यह आध्यात्मिक दृष्टि नहीं है, वे कर्म संन्यासी और कर्मयोगी के बीच भेद देखते हैं, और बाहरी त्याग को देखते हुए कर्म संन्यासी को श्रेष्ठ घोषित करते हैं। लेकिन जो विद्वान हैं, वे देखते हैं कि कर्म सन्यासी और कर्मयोगी दोनों ने अपने मन को ईश्वर में लीन कर लिया है, और इसलिए वे दोनों अपनी आंतरिक चेतना में समान हैं। थोडा आगे देखे तो तीसरे श्लोक में कहा गया है,

**ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।**
**निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते।।**

मतलब की जो कर्मयोगी न तो किसी वस्तु की कामना करते हैं और न ही घृणा करते हैं, उन्हें सदा त्यागी समझना चाहिए। सभी द्वैत से मुक्त होकर वे भौतिक ऊर्जा के बंधनों से आसानी से मुक्त हो जाते हैं। मतलब आंतरिक रूप से वैराग्य का अभ्यास करते हुए कर्मयोगी अपने सांसारिक कर्तव्यों का निर्वहन करते रहते हैं। इसलिए, वे ईश्वर की कृपा स्वरुप, सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणामों को समभाव के साथ स्वीकार करते हैं। भगवान ने इस दुनिया को इतनी खूबसूरती से डिजाइन किया है कि यह हमें अपनी क्रमिक उन्नति के लिए सुख और संकट दोनों का अनुभव कराती है। यदि हम अपने नियमित जीवन को जारी रखते हैं और हमारे रास्ते में आने वाली हर चीज को सहन करते हैं, तो खुशी-खुशी अपना कर्तव्य निभाते हुए, दुनिया स्वाभाविक रूप से हमें धीरे-धीरे आध्यात्मिक उन्नति की ओर धकेलती है। जैसे एक बार लकड़ी का एक टुकड़ा किसी मूर्तिकार के पास गया और कहा, 'क्या आप कृपया मुझे सुंदर बना सकते हैं?' मूर्तिकार ने कहा, 'मैं ऐसा करने के लिए तैयार हूं। लेकिन क्या आप इसके लिए तैयार हैं? 'लकड़ी ने उत्तर दिया, 'हाँ, मैं भी तैयार हूँ।' मूर्तिकार ने अपने औजार निकाले और हथौड़े और छेनी से तराशने का काम शुरू किया। हथौड़ी मारने पर लकड़ी चिल्लाई, 'तुम क्या कर रहे हो? बंद करो! यह बहुत दर्द होता है।' मूर्तिकार ने बुद्धिमानी से उत्तर दिया, 'यदि आप सुंदर बनना चाहते हैं, तो आपको दर्द सहना होगा।' लकड़ी ने कहा, 'ठीक है।' 'लेकिन कृपया थोड़ा धीरे धीरे कार्य करें। ' मूर्तिकार अपना काम करता रहा और लकड़ी चिल्लाती रही, 'आज के लिए बहुत हो गया; मैं इसे और सहन नहीं कर सकता।' पर मूर्तिकार अपने कार्य में अडग था, और कुछ ही दिनों में, लकड़ी को एक सुंदर देवता में बदल दिया, जो मंदिर की वेदी पर बैठने के लिए उपयुक्त था। तो फिर इसका मतलब साफ़ है की, मंदिर की वेदी जैसे पवित्र स्थान पर रहेना है तो दर्द सहन करना ही पड़ेगा, भगवद प्राप्ति की इच्छा रखते है तो संयम का पालन करना ही पड़ेगा और भगवान् ने कहे हुए गुणों को अपने जीवन में प्रस्थापित करना पड़ेगा। हमारे जीवन को व्यर्थ करना है या सार्थक करना है वो बात हम को खुद निश्चित करनी है। तो चलो फिर हम अपने जीवन को सुद्रढ़ बनाने का दृढ संकल्प लेते है और भगवद गीता की राह पर चलने का प्रमाणिक प्रयत्न करते है।

# सत्व, रज और तम से गुणातीत होकर ही अनासक्ति और दुःखों से मुक्ति संभव

डॉ. हितेश व्यास

**भगवद गीता के अध्याय चौदह में भगवान कृष्ण अच्छाई, जुनुन और अज्ञानता तथा इसके प्रभाव के बारे में बताते हैं जो हमारे जीवन के हर एक पहलु को प्रभावित करते हैं। यह व्यक्ति की सभी विशेषताओं, उनके कारणों, उनकी शक्ति के स्तर, तथा हर एक जीवित इकाई इससे कैसे प्रभावित होते हैं, साथ ही उससे उबरनें के बारे में बताते हैं। यहां वे स्पष्ट रूप से व्सक्ति को अज्ञानता और आशक्ति से ऊपर उठकर इनसे पार पाने की क्षमता प्राप्त करने तक, शुद्ध अच्छाई का मार्ग अपनाने की सलाह देते हैं। इस अध्याय में मुख्यतः भौतिक प्रकृति के तीन गुणों सत्व, रज और तम की व्याख्या करते हैं और कहते हैं कि जो व्यक्ति इन तीनों गुणों से परे चला गया है, वह अनासक्त है और दुःख से मुक्त होकर मुक्ति प्राप्त करता है। हम जानते हैं कि त्रिगुण क्या हैं, पर अक्सर यह भूल जाते हैं कि तीनों ही सभी मनुष्यों में अंतर्निहित हैं, और यही जीवन में हमारी आंतरिक प्रेरणा का स्रोत है।**

सत्व गुन तीनों में से बेहतर है, फिर भी इन श्लोकों में तीनों में से किसी एक की भी प्रधानता को अवांछनीय बताई है, क्योंकि सबसे पहले, यह सब प्रकृति (पदार्थ) के अधीन है, जिसका अर्थ है कि यह कर्म बंधनों को मजबूत करता है। दूसरी बात, तीनों की प्रधानता का अर्थ है कि जब हमारे भौतिक खोज, चाहे ज्ञान, शक्ति, धन या उपलब्धि होती है तो हम बंधन में बंधे होते हैं। इसके चलते खुशी, तृप्ति, शाश्वत यौवन और अमरता की प्राप्ति के लिए प्रयाश करते हैं और अपना रास्ता खो देते हैं। श्री भगवत गीता में कहा गया है कि हमारा लक्ष्य हमेशा संतुलन बनाए रखना और घ्यान अपने त्रिगुण पर केंद्रित रखना होना चाहिए। त्रिगुण को केन्द्रित करने की प्रक्रिया कर्म है, बशर्ते वह धर्म के अनुरूप हो। कहने का मतलब है कि यदि हम अपने प्रति सच्चे रहेंगे, तो हमारा त्रिगुण संतुलन में रहेगा, फिर चाहे हमारा कर्म कुछ भी हो। अध्याय 14 में कहा गया है कि सत्य की मुक्ति (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए, चीजों को संतुलन में रखें, जिसका अर्थ है कि व्यक्ति को अपनी प्रकृति के अनुरूप प्रेरित नहीं होना चाहिए और सत्य की तलाश करनी चाहिए। अध्याय 14 के श्लोक 1में कहा गया है-

**परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानं मानमुत्तमम्।**
**यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः॥**

अर्थात भगवान श्री कृष्ण अर्जुन से समस्त ज्ञान में भी सर्वश्रेष्ठ इस परम-ज्ञान को पुनः बताते है, जिसे जानकर सभी संत-मुनियों ने इस संसार से मुक्त होकर परम-सिद्धि को प्राप्त किया हैं। पिछले अध्याय में यह बताया गया था कि सभी जीवन आत्मा और पदार्थ के संयोजन से उत्पन्न हुआ हैं। प्रकृति ही पुरुष (आत्मा) के लिए कर्म क्षेत्र सृजित करता है और यह सब अपने आप नहीं होता बल्कि ईश्वर के निर्देशन के

> **सत्वगुण सद्गुण उत्पन्न करते हैं और बुद्धि को ज्ञान से आलोकित करते हैं। यह मनुष्य को स्थिर, संतुष्ट, दानी, दयालु, सहायक, और शांत बनाते हैं। इसके चलते व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम रोग मुक्त रहता हैं। सत्वगुण शांति और प्रसन्नता के कारण उत्पन्न होते हैं और इनमें आसक्ति होने से ये आत्मा को प्राकृत शक्ति के बंधन में डालते हैं।**

*लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं राष्ट्रवादी चिंतक हैं।*

अनुसार होता है जो सभी जीवों के शरीर में वास करते हैं। दुसरे श्लोक में कहते हैं।

**इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः।**
**सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च॥**

अर्थात इस परम ज्ञान में स्थिर होकर मनुष्य मेरे जैसे स्वभाव को ही प्राप्त होता है, वह जीव न तो सृष्टि के प्रारम्भ में पुनः उत्पन्न ही होता हैं और न ही प्रलय में कभी व्याकुल होता हैं। वास्तव में प्राकृत शक्ति के तीनों गुण बंधन का कारण हैं और इनका ज्ञान बंधनों से मुक्ति पाने का मार्ग प्रशस्त करता है। तीसरे श्लोक में कहते हैं,

**मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।**
**सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥**

अर्थात ईश्वर की यह आठ तत्वों वाली जड़ प्रकृति (जल, अग्नि, वायु, पृथ्वी, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार) ही समस्त वस्तुओं को उत्पन्न करने वाली है और मैं ही ब्रह्म (आत्मा) रूप में चेतन-रूपी बीज को स्थापित करता हूँ, इस जड़-चेतन के संयोग से ही सभी चर-अचर प्राणीयों का जन्म सम्भव होता है। जैसा कि 7वें और 8वें अध्याय में कहा गया है कि भौतिक सृष्टि के सृजन, स्थिति और प्रलय के चक्र का क्रम चलता रहता है। प्रलय के दौरान जो जीवात्माएँ भगवान से विमुख होती हैं वे महाविष्णु के उदर में जीवंत अवस्था में समा जाती हैं यहाँ तक की भौतिक शक्ति प्रकृति भी। जब भगवान सृष्टि सृजन की इच्छा करते हैं तब वे प्रकृति पर दृष्टि डालते हैं। परिणामस्वरूप यह व्यक्त होने लगती है और फिर क्रमिक रूप से मन, अहंकार, और पंच महाभूतों की उत्पत्ति होती है। दूसरे सृष्टिकर्ता ब्रह्मा की सहायता से प्राकृतिक शक्ति विविध जीवन रूपों को उत्पन्न करती है और ईश्वर आत्माओं को उन शरीरों में उसके पूर्व कर्मों के अनुसार रखता है।

श्रीकृष्ण अगले श्लोकों में यह समझाते हैं कि प्रकृति किस प्रकार से आत्मा को बंधन में डालती है। प्राकृत शक्ति सत्व, रजस और तमस तीनों गुणों से युक्त होती है। इसलिए शरीर, मन और बुद्धि जो प्रकृति द्वारा निर्मित होते हैं उनमें भी ये तीन गुण समाविष्ट रहते हैं। प्रकृति किसी के आंतरिक विचारों, बाह्य परिस्थितियों, पूर्व संस्कारों और अन्य तत्त्वों के आधार पर कोई एक या अन्य गुण उस पर हावी हो जाता हैं और अपनी छाप छोड़ता है। छठे श्लोक में कहा गया है,

**तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।**
**सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ ॥**

अर्थात सतोगुण अन्य गुणों की अपेक्षा अधिक शुद्ध होने के कारण पाप-कर्मों से जीव को मुक्त करके आत्मा को प्रकाशित करने वाला होता है, जिससे जीव सुख और ज्ञान के अहंकार में बँध जाता है। सत्वगुण सद्गुण उत्पन्न करते हैं और बुद्धि को ज्ञान से आलोकित करते हैं। यह मनुष्य को स्थिर, संतुष्ट, दानी, दयालु, सहायक, और शांत बनाते हैं। इसके चलते व्यक्ति का स्वास्थ्य उत्तम रोग मुक्त रहता हैं। सत्वगुण शांति और प्रसन्नता के कारण उत्पन्न होते हैं और इनमें आसक्ति होने से ये आत्मा को प्राकृत शक्ति के बंधन में डालते हैं। जैसे किसी जंगल में एक व्यक्ति जा रहा था तब तीन डाकुओं ने उस पर हमला किया। पहला इसकी हत्या कर सारा धन छीन लेन चाहता था। दूसरा ने इसे केवल बांधकर इसकी सारी सम्पत्ति लूटनो की सलाह दी और वे दूसरे की बात मानकर उसे रस्सियों से बांधकर उसकी सारी सम्पत्ति लूट ली। जब सभी कुछ दूर आगे निकल गये तब तीसरा डाकू लौटकर आया और यात्री की रस्सियाँ खोल दी और उसे जंगल के किनारे पर ले गया और कहा 'मैं स्वयं यहाँ से बाहर नहीं जा सकता लेकिन यदि तुम इस मार्ग पर आगे चलोगे तब तुम इस जंगल से बाहर निकल पाओगे।' इस घटना में पहला डाकू तमोगुणी था जो अज्ञानता का स्वरूप है जो वास्तव में अपनी अंतरात्मा को निर्जीव और निर्बल बनाकर तथा उसका पतन कर जीवात्मा की हत्या करना

चाहता था। दूसरा डाकू रजोगुणी है जो कि वासना का स्वरूप है जो जीवों में आसक्ति बढ़ाती है और आत्मा को अनगनित सांसारिक कामनाओं से बांधती है तथा तीसरा डाकू सत्वगुणी था जो अच्छाई का गुण है और जो मनुष्य में बुराइयों को कम करता है फिर भी सत्व गुण प्राकृत शक्ति के क्षेत्र के अधीन है। इसलिए इन तीनो गुणों में हमारी आसक्ति नहीं होनी चाहिए बल्कि हमें इसका प्रयोग दिव्यता की खोज करने में करना चाहिए। इन तीनों गुणों से परे शुद्ध सत्व है जो सत्वगुण की चरम अवस्था है जो प्राकृत शक्ति से परे है। जब आत्मा भगवद्प्राप्ति कर लेती है तब भगवान अपनी कृपा से आत्मा को शुद्ध सत्व प्रदान करते हैं तथा इन्द्रिय, मन और बुद्धि को दिव्य बनाते हैं। सातवें आठवें और नौवे श्लोकों में क्रमशः रजोगुण, तमोगुण और सत्वगुण की व्याख्या की गई है। रजोगुण इन्द्रिय सुखों के लिए वासना को भड़काता है। इससे प्रभावित होकर मनुष्य पद, प्रतिष्ठा, भविष्य, परिवार और गृहस्थ के सांसारिक कार्यों में व्यस्त हो जाता है और इनकी प्राप्ति के लिए अथक परिश्रम करता है। इस प्रकार यह आत्मा को सांसारिक जीवन के जंजाल में फंसा देता हैं। अगले कई श्लोकों में वे इससे छुटकारा पानें का मार्ग बताते है और कर्म-फल भगवान को अर्पित करने की सलाह देते हैं।

तमोगुण सत्वगुण के विपरीत है। इससे प्रभावित व्यक्ति को निद्रा, आलस्य, नशा, हिंसा और जुआ खेलने जैसे कृत्यों से सुख मिलता है। वे अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए अनैतिक व्यवहार करनें में भी संकोच नहीं करते। इस प्रकार तमोगुण आत्मा को अज्ञानता के गहन अंधकार की ओर ले जाता है जिससे यह अपनी आध्यात्मिक पहचान, जीवन के लक्ष्य, मानव के रूप में प्रदत्त आत्म उत्थान के अवसर को भूल जाती है। और सत्वगुण की प्रबलता से भौतिक जीवन के कष्ट कम हो जाते हैं और सांसारिक इच्छाएँ शांत हो जाती हैं। यह शुभ तो है किन्तु इसका नकारात्मक पहलू भी हो सकता है। उदाहरणार्थ वे जो संसार में कष्ट पाते हैं और अपने मन में उठने वाली कामनाओं से विक्षुब्ध रहते हैं, वे अपनी समस्याओं के समाधान के लिए प्रेरित होते हैं और यह प्रेरणा उन्हें आध्यात्मिक मार्ग की ओर ले जाती है किन्तु सत्वगुण से सम्पन्न लोग सरलता से आत्म संतुष्ट तो हो जाते हैं और वे लोकातीत अवस्था को प्राप्त करने में रूचि नहीं लेते।

सत्वगुण बुद्धि को ज्ञान से भी प्रकाशित करता है। यदि यह आध्यात्मिक ज्ञान से युक्त नहीं होता तब ऐसे ज्ञान के फलस्वरूप अभिमान उत्पन्न होता है और यह अभिमान भगवान की भक्ति के मार्ग में बाधक बन जाता है। यह प्रायः वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों आदि में दिखाई देता है। उनमें सामान्य रूप से सत्वगुण की प्रधानता होती है क्योंकि वे अपना समय और ऊर्जा ज्ञान को पोषित करने में लगाते हैं। फिर भी वे जो ज्ञान अर्जित करते हैं वह प्रायः उन्हें घमण्डी बना देता है और वे यह अनुभव करने लगते हैं कि ज्ञान अर्जन करने से परे कोई सत्य नहीं है। इस प्रकार से इन्हें धार्मिक ग्रंथों और भगवद् अनुभूत संतों पर विश्वास करना मुश्किल होता है। दसवे श्लोक में कहते हैं

**रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत।**
**रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा॥**

अर्थात रजोगुण और तमोगुण के घटने पर सतोगुण बढ़ता है, सतोगुण और रजोगुण के घटने पर तमोगुण बढ़ता है, इसी प्रकार तमोगुण और सतोगुण के घटने पर तमोगुण बढ़ता है। श्रीकृष्ण अब यह बताते हैं कि किसी व्यक्ति का स्वभाव किस प्रकार से तीनों गुणों में घूमता रहता है। प्राकृत शक्ति में ये तीनों गुण विद्यमान हैं और हमारा मन इसी शक्ति से निर्मित है इसलिए हमारे मन में तीनों गुण भी उसी प्रकार उपस्थित होते हैं। इनकी तुलना एक-दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाले तीन पहलवानों से की जा सकती है। इस प्रकार से तीनों गुण मनुष्य के स्वभाव पर प्रभाव डालते हैं। बाह्य परिवेश, आंतरिक चिन्तन और पिछले जन्मों के संस्कारों के प्रभाव के कारण एक या अन्य गुण हावी होना प्रारम्भ कर देते हैं। इन गुणों में से किसी गुण का प्रभाव कितने समय तक रहता है इसके लिए कोई नियम नहीं है। कोई एक गुण मन और बुद्धि पर एक क्षण की अल्पावधि के लिए या एक घंटे की अवधि या दीर्घ काल तक हावी रह सकता है। यदि किसी पर सत्व गुण हावी होता है, तब वह मनुष्य शांतिप्रिय, संतोषी, उदार, दयालु, सहायक, सुस्थिर और सुखी हो जाता है। जब रजोगुण की प्रधानता होती है तब कोई मनुष्य कामुक, उत्तेजित और महत्वाकांक्षी हो जाता है। दूसरों की उन्नति से ईर्ष्या करता है और इन्द्रिय सुखों के लिए उत्साह विकसित करता है। जब तमोगुण प्रधान हो जाता है तब मनुष्य पर निद्रा, आलस्य, घृणा, क्रोध, असंतोष, हिंसा और संदेह हावी हो जाते हैं। श्लोक 11, 12, 13 में श्रीकृष्ण पुनः दोहराते हैं कि किस प्रकार ये तीन गुण किसी जीव की सोच को प्रभावित करते हैं। सत्वगुण सदगुणों के विकास और ज्ञान के आलोक की ओर ले जाता है। रजोगुण लोभ और सांसारिक उपलब्धियों के लिए अत्यधिक गतिविधियों में व्यस्तता तथा मन को बैचेनी की ओर ले जाता है। और तमोगुण के कारण बुद्धि में भ्रम, आलस्य, मादक पदार्थों और हिंसा के प्रति रूचि उत्पन्न होती है। तीन गुणों के कारण मन का अस्थिर होना स्वाभाविक है। हालाँकि हमें ऐसी परिस्थितियों में निराश नहीं होना चाहिए बल्कि यह समझना चाहिए कि ऐसा क्यों होता है और इससे ऊपर उठने की चेष्टा करनी चाहिए। इसके लिए भगवान और गुरु के प्रति श्रद्धा भक्ति की भावनाओं को बनाए रखने के लिए मन को बाध्य करना चाहिए। यदि हमारी चेतना पूरे दिन दिव्यता में स्थित रहती है तब और साधना करना जरूरी नहीं है। श्लोक 14 में कहा गया है -

**यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत्।**
**तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥**

अर्थात जब कोई मनुष्य सतोगुण की वृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है, तब वह उत्तम कर्म करने वालों के निर्मल स्वर्ग लोकों को प्राप्त होता है। और श्लोक 15 में कहा गया है-

**रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते।**
**तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते॥**

अर्थात जब कोई मनुष्य रजोगुण की बृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है तब वह सकाम कर्म करने वाले मनुष्यों में जन्म लेता है और उसी प्रकार तमोगुण की बृद्धि होने पर मृत्यु को प्राप्त मनुष्य पशु-पक्षियों आदि निम्न योनियों में जन्म लेता है। श्रीकृष्ण बताते हैं कि जीवात्मा का प्रारब्ध उसके व्यक्तित्व पर आधारित होता है। कर्म नियमों के अनुसार हम वही प्राप्त करते हैं जिसके हम पात्र होते हैं जो सदगुणों और ज्ञान को विकसित करते हैं तथा दूसरों के प्रति सेवा की भावना रखते है वे पुण्यवान, विद्वानों, सामाजिक कार्यकर्ताओं इत्यादि के परिवारों में जन्म लेते हैं या वे स्वर्ग के उच्च लोकों में जाते हैं और जो अपने आपको लोभ, धन लोलुपता और सांसारिक महत्त्वकांक्षाओं के अधीन कर लेते हैं वे गहन भौतिक गतिविधियों में संलग्न रहने वाले प्रायः व्यावसायिक परिवारों में जन्म लेते हैं। वे जिनकी रुचि मादक पदार्थों के सेवन, हिंसा, आलस्य और कर्त्तव्य का परित्याग करने में होती है, वे अनपढ़ लोगों के परिवार में जन्म लेते हैं अन्यथा उन्हें विकासवाद की सीढ़ी से नीचे उतरने के लिए बाध्य होना पड़ता है और वह पशुओं की प्रजातियों में जन्म लेते हैं। श्लोक16 में सतोगुण के कर्मफल की व्याख्या की गई है।

**कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम्।**
**रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम्॥**

अर्थात सतोगुण में किये गये कर्म का फल सुख और ज्ञान युक्त निर्मल फल कहा गया है, रजोगुण में किये गये कर्म का फल दुःख कहा गया है और तमोगुण में किये गये कर्म का फल अज्ञान कहा गया है। सत्वगुणों से प्रभावित लोग शुद्धता, सदाचार और निःस्वार्थ भावना से परिपूर्ण होते हैं। इसलिए उनके कर्मों का सम्पादन अपेक्षाकृत शुद्ध मनोभावना और निःस्वार्थ भाव से युक्त होता है और इसके परिणाम आत्मिक उत्थान और संतोष प्रदान करते हैं। वे जो रजोगुण से प्रभावित होते हैं वे अपनी इन्द्रियों और मन की कामनाओं से उत्तेजित होते हैं। अपने कार्य के पीछे उनका उद्देश्य स्वयं और अपने आश्रितों की उन्नति तथा इन्द्रियों का तुष्टिकरण करना होता है। और वे जिनमें तमोगुण की प्रधानता होती है वे आज्ञानता बस तुच्छ सुखों के लिए पाप करते हैं जो आगे चलकर उन्हें केवल भ्रम में डुबा देता हैं। 18वें श्लोक में कहा गया है,

**ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः।**
**जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥**

अर्थात सतोगुण में स्थित जीव स्वर्ग के उच्च लोकों को जाता हैं, रजोगुण में स्थित जीव मध्य में पृथ्वी-लोक में ही रह जाते हैं और तमोगुण में स्थित जीव पशु आदि नीच योनियों में नरक को जाते हैं। जीवात्मा का पुनर्जन्म उसके उन गुणों से संबद्ध होता है जिनकी प्रबलता उनके व्यक्तित्व में प्रदर्शित होती है। इसकी तुलना विद्यालय (स्कूल) की शिक्षा पूरी कर महाविद्यालय (कॉलेज) में प्रवेश के लिए आवेदन प्रस्तुत करने वाले छात्र से की जा सकती है। अच्छे कॉलेजों में प्रवेश के लिए जो अच्छा अंक प्राप्त करते हैं उन्हें प्रतिष्ठित महाविद्यालयों में प्रवेश मिलता है जबकि अपेक्षाकृत कम अंक पाने वाले छात्रों को निम्न स्तर के कॉलेजों में प्रवेश मिलता है। इसके आगे के श्लोकों में भगवत्प्राप्ति का उपाय और गुणातीत पुरुष के लक्षण का वर्णन किया गया है जैसे श्लोक 19 में कहा गया है-

**नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति।**
**गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति॥**

अर्थात जब कोई मनुष्य प्रकृति के तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है और स्वयं को दृष्टा रूप से देखता है तब वह प्रकृति के तीनों गुणों से परे स्थित होकर मुझ परमात्मा को जानकर मेरे दिव्य स्वभाव को ही प्राप्त होता है। वे जो इस सिद्धांत को समझते हैं वे सांसारिक पदार्थों और लोगों के साथ अपनी आसक्ति और संबंधों को आबद्ध करना आरम्भ कर देते हैं और अपने संबंधों को भगवान और गुरु की भक्ति में दृढ़ करते हैं। इससे वे तीनों गुणों से गुणातीत होने में समर्थ हो जाते हैं और भगवान की दिव्य प्रकृति को पाते हैं। अंत में 20वें श्लोक में श्री भगवन कहते हैं।

**गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान्।**
**जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥**

अर्थात जब जीव प्रकृति के इन तीनों गुणों को पार कर जाता है तब वह जन्म, मृत्यु, बुढापा तथा सभी प्रकार के कष्टों से मुक्त होकर इसी जीवन में परम-आनन्द स्वरूप अमृत का भोग करता है। जिस प्रकार गंदे कुएँ के जल का सेवन करने से पेट खराब होता है। ठीक उसी प्रकार तीन गुणों से प्रभावित हाने पर हम उनके परिणाम भुगतने के लिए बाध्य होते हैं। 'रोग, बुढ़ापा, मृत्यु और भौतिक जगत में बार-बार जन्म लेना' चारों सांसारिक दुख हैं। श्रीकृष्ण बताते हैं कि जब हम तीनों गुणों से गुणातीत हाते हैं तब माया जीव पर हावी नहीं हो सकती और बंधन में नहीं डाल सकती। इस प्रकार आत्मा जन्म मरण के चक्कर से मुक्त होकर अमरता प्राप्त करती है।

# कलश धर्म और नूरिस्तानी समुदाय

डॉ.अर्चना तिवारी

**नूरिस्तान से लगे हुए पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी चित्राल क्षेत्र के कलश लोग नूरिस्तानियों से मिलते-जुलते हैं, लेकिन वे उन्नीसवी सदी में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में आते थे, इसलिए वे अब्दुर रहमान ख़ान के हमलों से बचे रहे और उनमें से कई अभी भी अपने पूर्वजों के धर्म के अनुयायी हैं।**

कलश या कलाश लोग हिन्दु कुश पर्वत श्रृंखला में बसा हुआ एक समुदाय है। यह उत्तर-पश्चिमी पाकिस्तान के ख़ैबर-पख़्तूनख़्वा राज्य के चित्राल ज़िले में रहते हैं। कलश लोग अपनी कलश भाषा बोलते हैं। कलश लोग और पड़ोस में रहने वाले अफ़ग़ानिस्तान के नूरिस्तानी लोग एक ही जाति की दो शाखाएँ हैं। नूरिस्तानी लोगों को उन्नीसवी सदी के अंत में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अब्दुर रहमान ख़ान ने पराजित करके मुस्लिम बनाया था जबकि बहुत से कलश लोग अभी भी अपने हिन्दू धर्म से मिलते-जुलते प्राचीन धर्म के अनुयायी हैं। अनुमान लगाया जाता है के अब इनकी जनसंख्या 6000 के लगभग है। कलश लोग अधिकतर बुमबुरेत, रुम्बुर और बिरिर नाम की तीन घाटियों में रहते हैं और कलश भाषा में इस क्षेत्र को 'कलश देश' कहा जाता है।

कलश लोगों की संस्कृति अपने इर्द-गिर्द के लोगों से बिलकुल भिन्न है। यह कई देवी-देवताओं में विशवास रखते हैं। क्योंकि बहुत से कलश लोगों का रंग सफ़ेद है और इनकी आँखें अक्सर नीली-भूरी होती हैं, इसलिए भारत में अंग्रेज़ी राज के ज़माने में कई पश्चातीय इतिहासकारों का कहना था के यह सिकंदर की फ़ौजों में शामिल यूनानियों के वंशज हैं, लेकिन आधुनिक युग में इसे एक मिथ्या ही माना जाता है। उनके धर्म को भी पहले प्राचीन यूनानी धर्म जैसा माना जाता था, लेकिन आधुनिक अध्ययन से पता चला है के यह प्राचीन भारतीय और हिंद-ईरानी धर्म के कहीं ज्यादा पास है।

कलश भाषा भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग और अफ़ग़ानिस्तान में पायी जाने वाली दार्दी भाषा परिवार की एक सदस्य है।

## नूरिस्तानी समुदाय

नूरिस्तानी समुदाय पूर्वी अफ़ग़ानिस्तान के नूरिस्तान क्षेत्र में रहने वाला एक समुदाय है। नूरिस्तान के लोग अपने सुनहरे बालों, हरी-नीली आँखों और गोरे रंग के लिए जाने जाते हैं। उन्नीसवी सदी के अंत तक नूरिस्तानियों का धर्म हिन्दू धर्म से मिलता जुलता एक अति-प्राचीन हिन्द-ईरानी धर्म था और नूरिस्तान को इर्द-गिर्द के मुस्लिम इलाक़ों के लोग 'काफ़िरिस्तान' के नाम से जानते थे। सैंकड़ों-हज़ारों वर्षों तक यहाँ के लोग स्वतन्त्र रहे और यहाँ तक कि पंद्रहवी सदी के आक्रमणकारी तैमुरलंग को भी हरा दिया। १८९० के दशक में अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अब्दुर रहमान ख़ान ने इस क्षेत्र पर आक्रमण करके इस पर अधिकार कर लिया। इसके बाद यहाँ के लोगों को विवश होकर मुसलमान बनाना पड़ा और इस क्षेत्र का नाम भी बदल कर 'नूरिस्तान' कर दिया गया, जिसका अर्थ है 'नूर' (यानि 'प्रकाश') का स्थान। यहाँ के लोगों के रीति-रिवाज और धार्मिक मान्यताओं में अभी भी उनके इस्लाम से पूर्व के धर्म के तत्व मिलते हैं।

नूरिस्तान से लगे हुए पाकिस्तान के उत्तर-पश्चिमी चित्राल क्षेत्र के कलश लोग नूरिस्तानियों से मिलते-जुलते हैं, लेकिन वे उन्नीसवी सदी में ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन भारत में आते थे, इसलिए वे अब्दुर रहमान ख़ान के हमलों से बचे रहे और उनमें से कई अभी भी अपने पूर्वजों के धर्म के अनुयायी हैं। अलग-अलग नूरिस्तानी और कलश क्षेत्रों में भाषा का भी अंतर है, लेकिन ये सारी भाषाएँ दार्दी भाषाओं में ही गिनी जाती हैं।

*लेखिका प्रखर राष्ट्रवादी चिंतक और शिक्षाविद् हैं।*

## सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

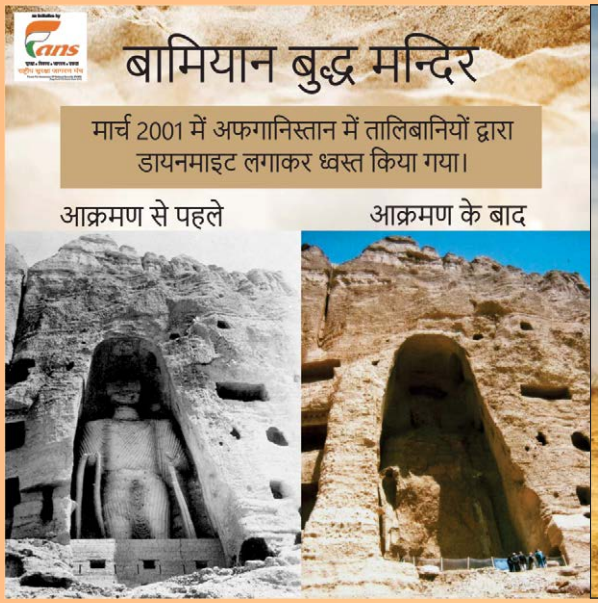

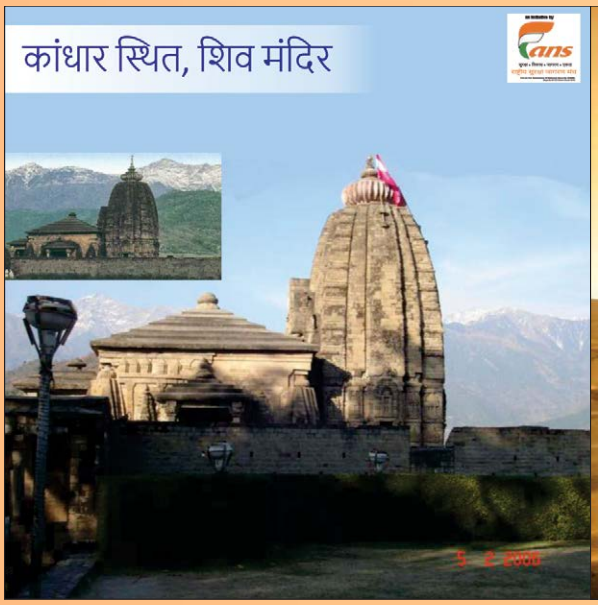

चित्राल शहर का नाम हिन्द - आर्य शब्द "छेत्रार"से आया

चित्रालपश्चिमोत्तरी पाकिस्तान के ख़ैबर-पख़्तूनख़्वा प्रान्त के चित्राल ज़िले की राजधानी और सबसे बड़ा शहर है।
चित्राल' खोवार भाषा के 'छेत्रार' शब्द से आया है।
खोवार हिन्द-आर्य भाषा-परिवार की एक दार्दी भाषा है, इसलिए 'छेत्रार' के सजातीय शब्द हिन्दी में भी मिलते हैं, जैसे कि 'क्षेत्र', 'छेत्र' और 'खेत'।

हिंदुकुश पर्वतीय क्षेत्र की श्रृंखला में रहने वाला एक समुदाय

कलश समुदाय
मान्यताओं के अनुसार ऋग्वेद में वर्णित गांधारी समुदाय के वंशजों में कलश समुदाय

राजा अनाव्रत के शासनकाल में निर्मित युनेस्को विश्व धरोहर में शामिल ११ वीं शताब्दी का बागान मंदिर, म्यामांर।

बागान बौद्ध मन्दिर, म्यामांर।

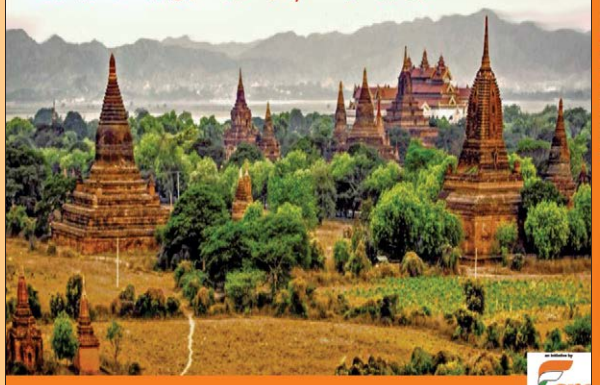

यम जटाडॉ
म्यांमार की रामलीला

रामायण का प्रदर्शन करने वाले बर्मी कलाकार।
रामायण को म्यांमार में 'यम जटाडॉ' के नाम से जाना जाता है।
यह म्यांमार का एक अनौपचारिक राष्ट्रीय महाकाव्य है।

रामायण का म्यांमार संस्करण,
यम के साथ भारतीय डाक टिकट, यम जटाडो।

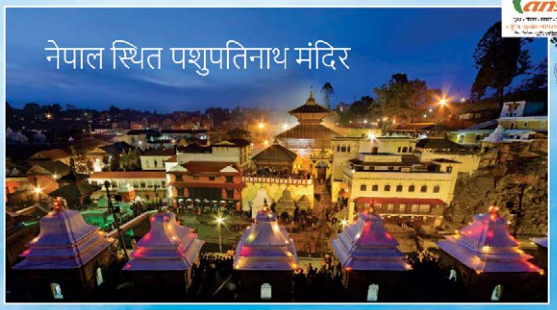

नेपाल स्थित पशुपतिनाथ मंदिर

यूनेस्को की विश्व धरोहर में शामिल
यह भव्य मंदिर बागमती नदी के किनारे काठमांडु में स्थित है और यहां पर देश-विदेश से पर्यटक आते हैं।
मान्यताओं के अनुसार केदारनाथ और पशुपतिनाथ मंदिर के दोनों ज्योतिर्लिंग मिलकर ही पूर्ण ज्योतिर्लिंग बनता है।

## जानकी मंदिर, जनकपुर:

मिथिला के राजा जनक की राजधानी जनकपुर
नेपाल की राजधानी काठमांडू से 400 किलोमीटर दक्षिण पूरब में बसा है।
यह शहर भगवान राम की ससुराल के रूप में विख्यात है।
इस नगर में ही माता सीता ने अपना बचपन बिताया था।
भगवान राम ने इसी जगह पर शिव धनुष तोड़ा था।
यहां मौजूद एक पत्थर के टुकड़े को उसी धनुष का अवशेष कहा जाता है।
यहां धनुषा नाम से विवाह मंडप स्थित है।

## काठमांडू : नेपाल में पशुपतिनाथ मंदिर के निकट स्थित है

गुजरेश्वरी मंदिर जहां माता केदोनों घुटने (जानु) गिरे थे।
इसकी शक्ति है महशिरा (महामाया) और भैरव को कपाली कहते हैं।
वैसे इसका सही नाम है गुह्येश्वरी। पशुपतिनाथ मंदिर से कुछ दूरी पर
बागमती नदी के दूसरी तरफ स्थित इस मंदिर में विराजमान
देवी नेपाल की अधिष्ठात्री देवी के रूप में भी पूजी जाती हैं।

## गंडकी मुक्तिनाथ मंदिर

नेपाल में गंडकी नदी के तट पर पोखरा नामक स्थान पर स्थित मुक्तिनाथ मंदिर,
जहां माता का मस्तक या गंडस्थल अर्थात कनपटी गिरी थी।
इसकी शक्ति है गण्डकी चण्डी और शिव या भैरव चक्रपाणि हैं।
इस शक्तिपीठ में सती के "दक्षिणगण्ड" (कपोल) का पतन हुआ था।
यह मंदिर पोखरा से 125 किलोमीटर दूर है।

## मिथिला- उमा (महादेवी शक्तिपीठ)

भारत-नेपाल सीमा पर जनकपुर रेलवे स्टेशन के निकट
मिथिला में माता का बाया स्कंध गिरा था।
नेपाल के जनकपुर से 15 किलोमीटर पूर्व की ओर
मधुबनी के उत्तर पश्चिम में उच्चैठ नामक स्थान में
वनदुर्गा मंदिर है यही मुख्य शक्तिपीठ है।

एक नेपाली डाक टिकट पर माँ सीता और प्रभु राम। (1982)

श्री राम और माँ सीता के विवाह का प्रतिनिधित्व करते हुए नेपाली डाक टिकट। (1991)

# सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

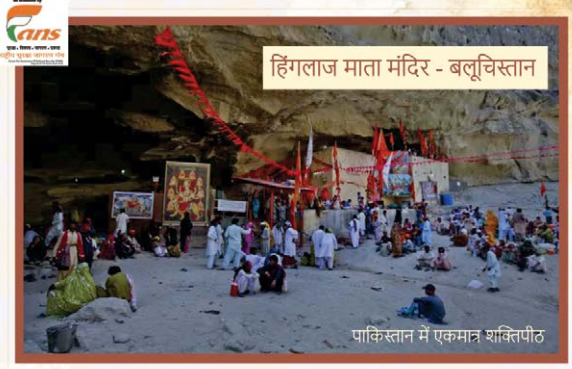


पाकिस्तान द्वारा जबरन कब्जाएगए बलूचिस्तान में हिंगोल नदी के समीप हिंगलाज क्षेत्र में स्थित है। यह मंदिर 51 शक्तिपीठों में से एक है। हिंगलाज ही वह जगह है, जहां माता का सिर गिरा था। यहां माता सती कोटटरी रूप में जबकि भगवान शंकर भीमलोचन भैरव रूप में प्रतिष्ठित हैं।

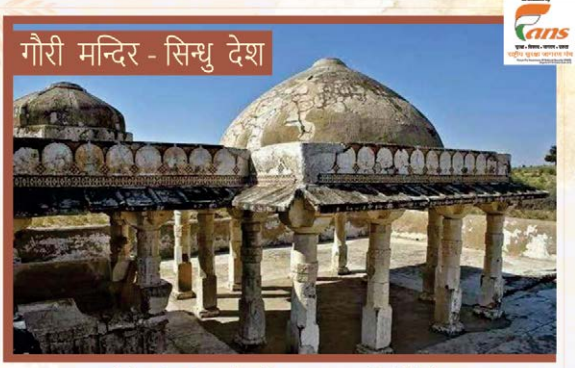


गौरी मंदिर सिन्धु देश के थारपारकर जिले में है। इस जिले में अधिकतर आदिवासी हैं जिन्हें थारी हिन्दू कहा जाता है। मध्यकाल में बने इस मंदिर में हिन्दू और जैन धर्म के अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियां रखी हुई हैं। पाकिस्तान के कट्टरपंथियों के बढ़ते प्रभाव के कारण यह मंदिर भी जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पहुंच चुका है।

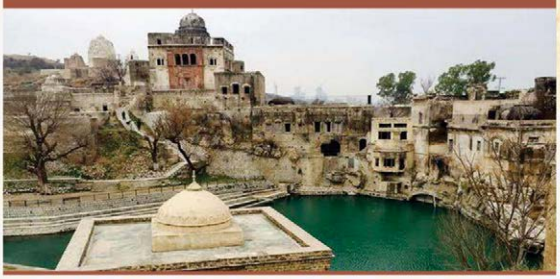


पाकिस्तान में सबसे बड़ा और सबसे पुराना मन्दिर | पाकिस्तान के पंजाब प्रांत में जिला चकवाल शहर से करीब 30 किलोमीटर दूर दक्षिण में कोहिस्तान नामक पर्वत श्रृंखला में महाभारतकालीन कटासराज नाम का एक गांव है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार जब शिवजी की पत्नी सती का निधन हुआ तो वे इतना रोए कि उनके आंसू रुके ही नहीं और उन्हीं आंसुओं के कारण 2 तालाब बन गए। इनमें से एक राजस्थान में पुष्कर है और दूसरा यहां कटाशा में है। हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार शिव ने सती से शादी के बाद कई साल कटासराज में ही गुजारे थे। यह मंदिर करीब 900 साल पुराना है।

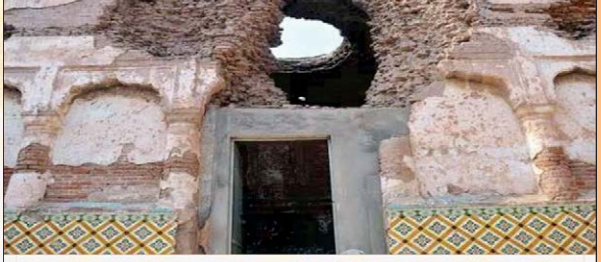

## प्रह्लादपुरी मंदिर

होली के त्यौहार का आरम्भ स्थल | कट्टरता ने किया जर्जर

भक्त प्रह्लाद ने भगवान नृसिंह के सम्मान में एक मंदिर बनवाया था, जो वर्तमान में पाकिस्तान स्थित पंजाब के मुल्तान शहर में है। इस मंदिर का नाम प्रह्लादपुरी मंदिर है। इस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि यहीं नरसिंह भगवान ने एक खंभे से निकलकर प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप को मारा था।

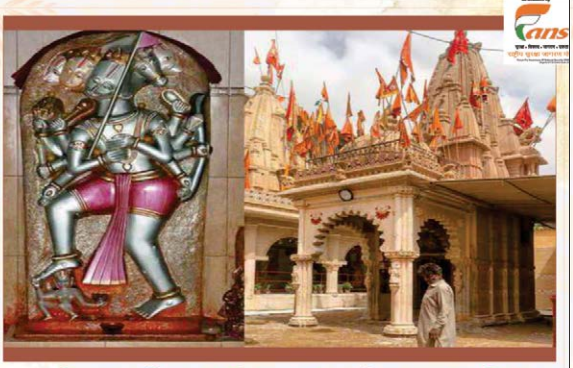

## पाकिस्तान में राम मंदिर - पंचमुखी हनुमान मन्दिर

कराची के इस 1500 साल पुराने पंचमुखी हनुमान मंदिर में आज भी काफी लोग जाते हैं। नागरपारकर के इस्लामकोट में पाकिस्तान का यह इकलौता ऐतिहासिक राम मंदिर है। एक और पंचमुखी हनुमान मंदिर कराची के शॉल्जर बाजार में बना है। इस मंदिर को जीर्णोद्धार की सख्त जरूरत है। यहां के पंचमुखी हनुमान की मूर्ति अद्भुत है।

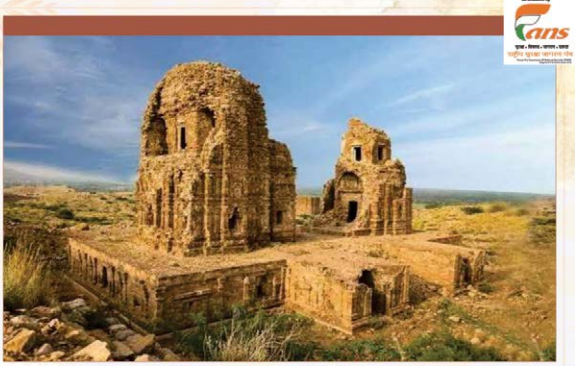

## मरी इंडस मंदिर

कट्टरता ने किया जर्जर

पंजाब के कालाबाग में स्थित यह मंदिर मरी नामक जगह पर है, जो कभी गांधार प्रदेश का हिस्सा थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी अपनी पुस्तक में मरी का उल्लेख किया है। 5वीं सदी में बना यह मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से अद्भुत है, लेकिन उपेक्षा के कारण खंडहर हो चुका है।

## सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

### श्री वरुणदेव मंदिर

1,000 साल पुराने इस अद्भुत मंदिर को 1947 में बंटवारे के बाद भू-माफियाओं ने अपने कब्जे में ले लिया था। 2007 में पाकिस्तान हिन्दू काउंसिल ने इस बंद पड़े और क्षतिग्रस्त मंदिर को फिर से तैयार करने का फैसला किया। जून 2007 में इसका नियंत्रण पीएचसी को मिल गया, लेकिन इस मंदिर की देखरेख देखरेख आज भी नहीं है

स्वामीनारायण मंदिर सिन्धु देश। के कराची के एमए जिन्ना रोड पर स्थित है। अप्रैल 2004 में मंदिर ने अपनी 150वीं सालगिरह मनाई। मंदिर में बनी धर्मशाला में लोगों के ठहरने की भी व्यवस्था है। इस मंदिर के बारे में कहा जाता है कि यहां हिन्दुओं के साथ-साथ मुस्लिम भी पहुंचते हैं

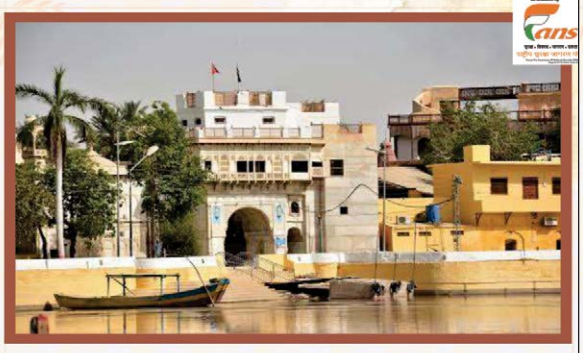

### साधु बेला मंदिर, सुक्कुर, सिन्धु देश

8वें गद्दीनशीं बाबा बनखंडी महाराज की मृत्यु के बाद संत हरनामदास ने इस मंदिर का निर्माण 1889 में कराया। सिन्धु देश के सुक्कुर में बाबा बनखंडी महाराज 1823 में आए थे। उन्होंने मेनाक पर्वत को एक मंदिर के लिए चुना। यहां होने वाला भंडारा मशहूर है।

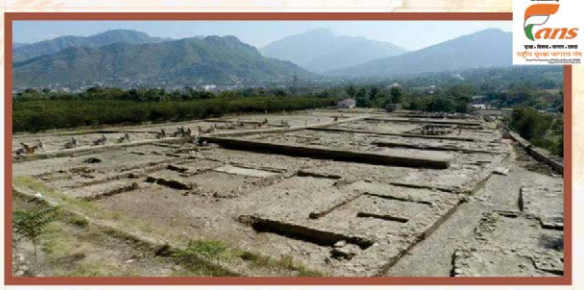

### भगवान विष्णु मन्दिर: स्वात जिला, खैबर-पख्तूनख्वा

उत्तर पश्चिमी पाकिस्तान में खोजे गए भगवान विष्णु के 1,300 साल पुराने मंदिर। हिंदू शाही या काबुल शाही (850 1026 सीई) एक हिंदू राजवंश था जिसने काबुल घाटी (पूर्वी अफगानिस्तान), गांधार (आधुनिक पाकिस्तान-अफगानिस्तान) और वर्तमान में उत्तर-पश्चिमी भारत पर शासन किया था।

### मां शारदा शक्ति पीठ, पाक अधिकृत कश्मीर

धार्मिक कट्टरता से नष्ट होती संस्कृति

यह मंदिर भारत-पाकिस्तान की नियंत्रण रेखा पर पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर में है। यह मंदिर भी अब लगभग खंडहर में तब्दील हो चूका है। माना जाता है कि भगवान शंकर यहां से यात्रा करते हुए निकले थे। इस मंदिर की महत्ता सोमनाथ के शिवा लिंगम मंदिर जितनी है यह मंदिर लगभग 5000 साल पुराना माना जाता है। मंदिर के पास मादोमती नाम का एक तालाब है। इस तालाब का पानी बहुत ही पवित्र माना जाता है।

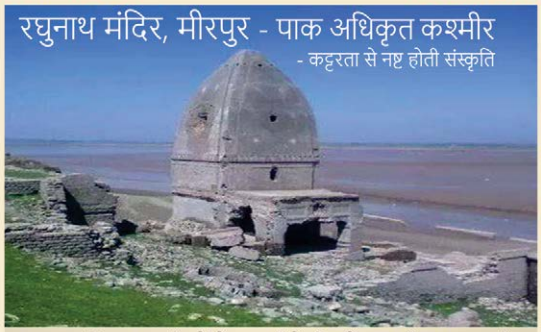


पाक अधिकृत कश्मीर में झेलम नदी के किनारे बसा मीरपुर बहुत ही खुबसूरत शहर है। मीरपुर में बहुत ही प्रसिद्ध रघुनाथ (राम) मंदिर है। अब वह विरान खंडहर बन चुका है। मीरपुर कभी हिन्दू बहुल क्षेत्र हुआ करता था। यहां 1947 के पहले 20 फीसदी हिन्दू आबादी थी। एक किताब के मुताबिक यहां 18 हजार हिन्दुओं की हत्या कर दी गई थी। यह तो पीओके के एक जिले मीरपुर के शहर की कहानी है। ऐसे 10 जिले हैं जहां 1947 के पहले लाखों की संख्या में हिन्दू रहते थे।

# सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

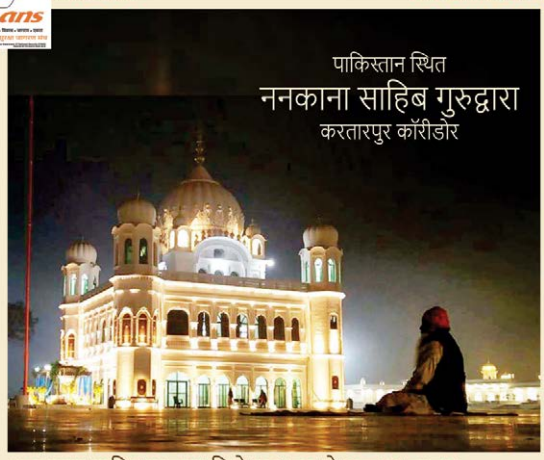


करतारपुर साहिब गुरुद्वारा जिसे मूल रूप से गुरुद्वारा दरबार साहिब के नाम से जाना जाता है, सिखों का एक प्रमुख धार्मिक स्थल है, जहां गुरु नानक देव ने अपने जीवन के अंतिम वर्ष बिताए।

## गोरखनाथ मंदिर

कट्टरता से नष्ट होती संस्कृति

पाकिस्तान के पेशावर में गोरखनाथ मंदिर है। यह मंदिर 160 साल पुराना है। यह मंदिर बंटवारे के बाद से ही बंद पड़ा था, लेकिन पेशावार हाईकोर्ट के आदेश पर नवंबर 2011 में इसे दोबारा खोला गया।

## कट्टरता के दुष्परिणाम

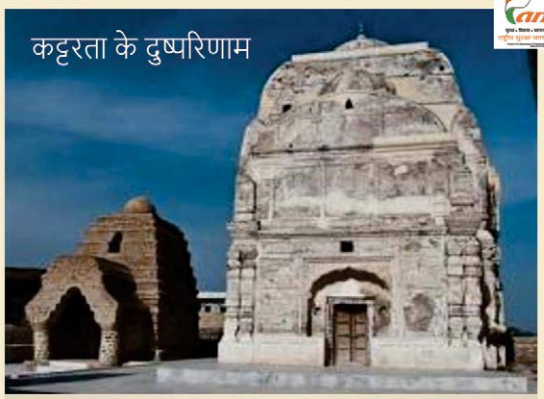

पाक अधिकृत कश्मीर में वैसे तो बहुत से मंदिरों का अस्तित्व अब नहीं रहा लेकिन यह शिव मंदिर अब खंडर ही हो चुका है। भारत-पाक बंटवारे के कुछ सालों तक यह मंदिर अच्छी अवस्था में था, लेकिन पाक अधिकृत कश्मीर में आतंकियों के बढ़ते प्रभाव के कारण मंदिर में श्रद्धालुओं का आवागमन कम हो गया और अब यह मंदिर विरान पड़ा है।

6 फरवरी 2019 सिन्धु देश के खैरपुर जिले के एक कस्बे कुंब में स्थित श्यामसुंदर सेवा मंडली मंदिर में कट्टरपंथियों द्वारा आगजनी हुई।

आतंकियों द्वारा मे कराची, सिन्धु देश स्थित हनुमान मन्दिर तोड दिया गया

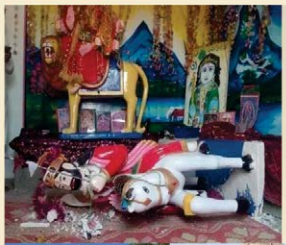

**10 OCTOBER 2021**
सिन्धु देश के हिंदू मंदिर में तोड़फोड़

सिन्धु देश में गिराया गया **100** साल पुराना मंदिर

## पाकिस्तान में साम्प्रदायिक हिंसा अल्पसंख्यक हो रहे शिकार

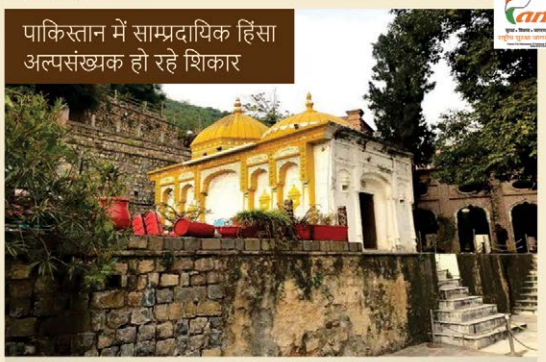

पाकिस्तान की राजधानी इस्लामाबाद के आसपास और पंजाब के रावलपिंडी शहर में कई ऐतिहासिक मंदिर और गुरुद्वारे मौजूद हैं। इस्लामाबाद में पुराने समय के 3 मंदिर हुआ करते थे। एक सैयदपुर, दूसरा रावल धाम और तीसरा गोलरा के मशहूर दारगढ़ के पास है। सैयदपुर गांव में स्थित राम मंदिर के बारे में कहा जाता है कि ये राजा मानसिंह के समय में 1580 में बनवाया गया था।

## सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

प्राचीन **तक्षशिला विश्वविद्यालय** सिंधु नदी के पूर्वी तट पर तक्षशिला शहर, पाकिस्तान में स्थित एक प्राचीन भारतीय विश्वविद्यालय था। तक्षशिला के बारे में सबसे पहला प्रमाण वाल्मीकि रामायण से मिलता है।

हिंसक कट्टर आक्रांता गजनी ने ध्वस्त किया

## अतेशगाह मंदिर

अजरबैजान एक मुस्लिम देश है जहां के अतेशगाह मन्दिर में हिन्दू, सिख, पारसी, तीनों की मान्यताएं बसती हैं।

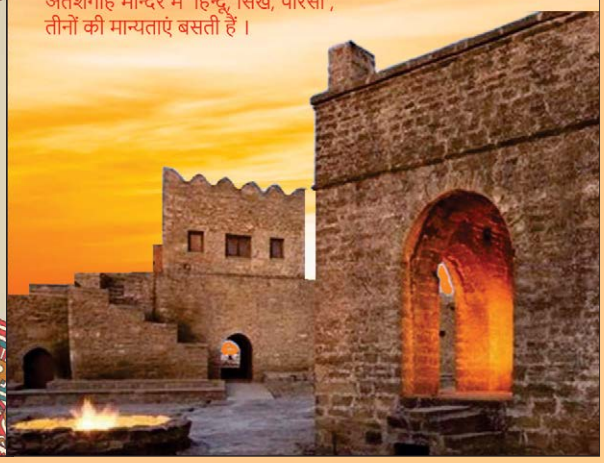

## झूलेलाल जी का पावन स्थान

सिन्धी हिन्दुओं के उपास्य देव हैं
जिन्हें 'इष्ट देव' कहा जाता है।
उनके उपासक उन्हें वरुण (जल देवता) का अवतार मानते हैं।

## ईरान का बंदर अब्बास विष्णु मन्दिर:

ईरान में एक ऐतिहासिक स्मारक के शासनकाल के दौरान 1310 एएच (1892 ईस्वी) में निर्माण। मंदिर भगवान विष्णु को समर्पित है।

## पानीपत के तीसरे युद्ध में लारे मराठा योद्धा के वंशज आज भी बलूचिस्तान में

**- बुगती मराठा !!**

- बलूचिस्तान

श्रीलंका के मन्नार के निकट का विख्यात 'केतीश्वरम' मंदिर ! त्रेतायुग में प्रभु श्रीराम ने यहां शिवलिंग की पूजा की थी।

श्रीलंका में कोणेश्वरम मन्दिर

मेलबर्न शहर में भगवान शिव और विष्णु मंदिर
- ऑस्ट्रेलिया -

श्री वेंकटेश्वर मंदिर हेलेन्सबर्ग शहर में - ऑस्ट्रेलिया

**हिदा-सन्नोगु तीर्थ**

तकयामाहिदा-सन्नोगु ऊंचे पेड़ों से घिरा हुआ है जो इसे बौना लगता है। अपनी प्राकृतिक सुंदरता के अलावा, तीर्थस्थल को शिंटो सन्नो मात्सुरी उत्सव में अपनी भूमिका के लिए जाना जाता है।

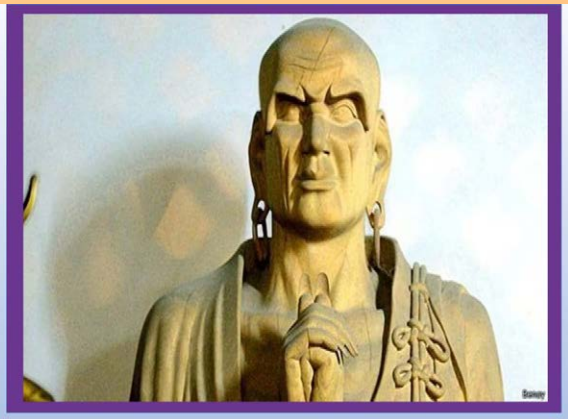

ब्रह्मा, गणेश, गरुड़, वायु और वरुण की पूजा आज भी जापान में की जाती है.

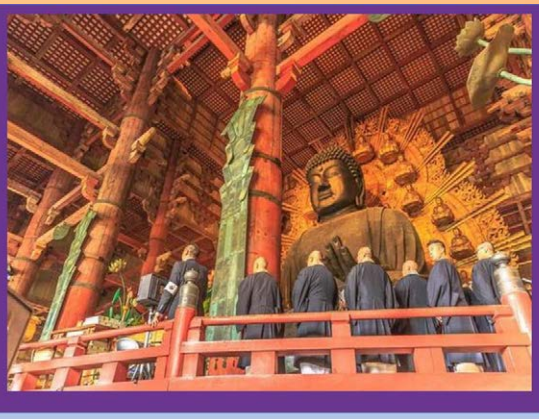

जापान और भारतीय तमिल ब्राह्मण विद्वान और भिक्षु : बोधिसेन।

# सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

शक्ति पीठ देवी-केंद्रित हिंदू परंपरा शक्ति में महत्वपूर्ण मंदिर और तीर्थ स्थल हैं। 51 शक्ति पीठ हैं जिनमें से 18 को मध्ययुगीन हिंदू ग्रंथों में महा (प्रमुख) के रूप में नामित किया गया है। देवी सती की मृत्यु के बाद। दुःख से, शिव ने सती के शरीर को ब्रह्मांड के चारों ओर अपने साथ रखा। उनकी दयनीय स्थिति को देखते हुए, भगवान विष्णु को अपने सुदर्शन चक्र का उपयोग करके अपने शरीर को 51 शरीर के अंगों में काटना पड़ा, जो पवित्र स्थल बनने के लिए पृथ्वी पर गिर गया जहां सभी लोग देवी को श्रद्धांजलि दे सकते हैं। देवी पूजा के इन ऐतिहासिक स्थानों में से अधिकांश भारत में हैं, लेकिन बांग्लादेश में सात, पाकिस्तान में तीन, नेपाल में तीन और तिब्बत और श्रीलंका में एक-एक ऐतिहासिक स्थान हैं।

शक्ति पीठो के स्थानों को दिखाने वाला निम्नलिखित नक्शा जैसा कि हम सभी जानते हैं कि बंगाल (पश्चिम और बांग्लादेश) हमेशा देवी पूजा का केंद्र रहा है (समकालीन समय की तरह केंद्रीय दुर्गा नहीं)। बंगाल में, देवी पूजा इतनी आम और प्रचलित थी कि जब ब्रामनिस्टों ने आकर अपनी सामाजिक-धार्मिक आधिपत्य लगाने का प्रयास किया, तो उन्होंने पाया कि उनकी स्वीकृति तब तक अधूरी रहेगी जब तक कि वे स्वदेशी समुदायों की मौजूदा मान्यताओं और प्रथाओं के साथ नहीं आते।

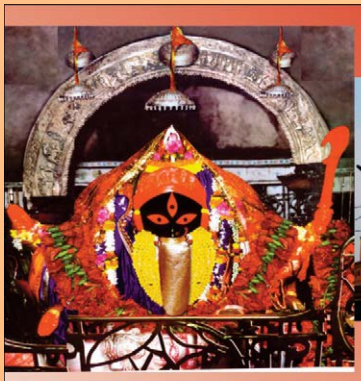

## कालीघाट, कोलकाता

कालीघाट, कोलकाता: (देवी काली) यह 51 शक्ति पीठ में से एक है। कहा जाता है कि दक्षिणी सती का दाहिना पैर यहां गिर गया है। यहां की शक्ति को दक्षिणा कालिका के नाम से जाना जाता है, जबकि भैरव नकुलेश है। हिंदू शक्ति तीर्थ केंद्रों (शिव और दुर्गा / काली / शक्ति उपासकों) के संदर्भ में होली के सबसे पवित्र में से एक माना जाता है

## कंकलितला, बीरभूम

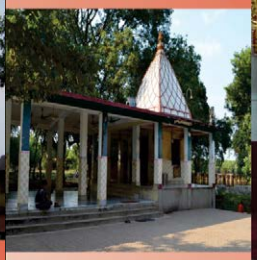

कंकलितला, बीरभूम: (देवी कांकलेश्वरी)। कांकलितला भारतीय राज्य पश्चिम बंगाल में बीरभूम जिले के बोलपुर श्रीनिकेतन में एक मंदिर शहर है। यह शक्ति पीठ में से एक है जहां सती की कमर (या बंगाली में कांकल) गिर गई।

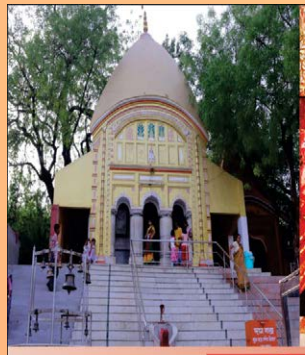

## नलहटी, बीरभूम

नलहटी, बीरभूम: (देवी नालातेश्वरी) इस शहर का नाम शक्ति पीठ नलतेश्वरी मंदिर के नाम पर रखा गया है, जो पौराणिक कथाओं के अनुसार स्थित है जहां "नाला" यानी देवी शक्ति का गला गिर गया था। यह भारत के 51 शक्ति पीठ में से एक है।

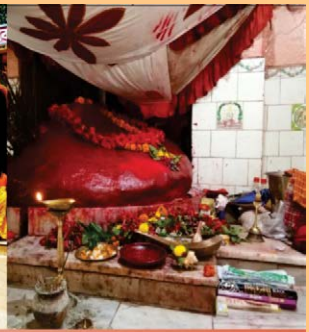

सैंथिया, बीरभूम: (देवी नंदीकेश्वरी) सैंथिया (पूर्व में नदीपुर) एक शहर है और बीरभूम जिले के सूरी सदर उपखंड में एक नगर पालिका है जिसे बिजनेस सिटी के नाम से भी जाना जाता है। ऐसा माना जाता है कि सैंथिया नाम 'सैंता' से लिया गया है, जो पोइला बोइशाख और विजयादशमी में देवी नंदीकेश्वरी की पूजा के बाद सैंथिया के व्यापारियों द्वारा 'खेरो खटा' (बिज़नेस बुक) में इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द है।नंदीपुर सैंथिया का प्राचीन नाम था। नंदीपुर नाम की उत्पत्ति नंदीकेश्वरी के प्रसिद्ध मंदिर से हुई थी।

किरितेश्वरी मंदिर, किरितकोना, मुर्शिदाबाद: (देवी किरीतेश्वरी) मंदिर किरीतकोना गाँव में स्थित है जिसे किरीतेश्वरी के नाम से जाना जाता है। पुराणों के अनुसार मंदिर का निर्माण 1000 वर्ष से अधिक पुराना है और इस स्थान को महामाया का सोने का स्थान माना जाता था। स्थानीय लोग इस मंदिर को महिषामर्दिनी कहते हैं। देवी को मुकुटेश्वरी (जैसे उनका मुकुट या मुकुट गिर गया) पवित्र देवी के रूप में भी पूजा जाता है। मूल मंदिर 1405 में नष्ट हो गया था। यह मुर्शिदाबाद जिले का सबसे पुराना मंदिर है। एक किंवदंती है कि नवाब मीर जाफर ने अपनी मृत्यु के बिस्तर में माँ के पवित्र चरणामृतो (पवित्र जल) के लिए अनुरोध किया था जो इसकी दिव्यता का प्रतीक है।

तारापीठ, बीरभूम: देवी तारा भी एक बहुत लोकप्रिय स्थान है, तारापीठ भारतीय राज्य पश्चिम बंगाल के बीरभूम जिले के चांदीपुर गांव रामपुरहाट में एक हिंदू मंदिर है, जो अपने तांत्रिक मंदिर और उसके आस-पास के अंतिम संस्कार (महा शमशान) के मैदान के लिए जाना जाता है, जहां साधना (तांत्रिक अनुष्ठान) किया जाता है। तांत्रिक हिंदू मंदिर देवी तारा को समर्पित है, जो देवी का एक डरावना तांत्रिक पहलू है, जो कि शक्तिवाद के मुख्य मंदिर हैं। मंदिर के पुजारी भक्तों को अपने मातृ पहलू को प्रकट करने के लिए बड़ी श्रद्धा के साथ पूजा (पूजा) की पेशकश करते हैं। उनकी पूजा तारा के शांतिपूर्ण मातृ दूरदर्शी रूप के साथ देवी के सती मिथक के उग्र उत्तर भारतीय चित्र को मिश्रित करती है। श्रद्धालु पूजा करने और पूजा के बाद भी मंदिर परिसर में प्रवेश करने से पहले मंदिर से सटे पवित्र टैंक में पवित्र स्नान करते हैं। टैंक के पानी को उपचार शक्तियां कहा जाता है और यहां तक कि मृतकों को जीवन बहाल भी किया जाता है।

सुगंधा, बरिशल: (देवी सुगंधा) बरिशल, एक प्रमुख शहर है जो दक्षिण-मध्य बांग्लादेश में कीर्तनखोला नदी के तट पर स्थित है। कहा जाता है कि यहां मां सती की नाक गिरी थी। माँ सती की मूर्ति को सुनंदा कहा जाता है और भगवान शिव को त्रैम्बक के रूप में पूजा जाता है। पूरे परिसर को ओएस स्टोन बनाया गया है, जिस पर देवताओं के चित्र और मूर्तियां खुदी हुई हैं। मूर्तियां मंत्रमुग्ध कर देने वाली हैं।

श्रीहट्टा, सिलहट: (देवी लक्ष्मी) श्री श्री महालक्ष्मी भैरबी गिबा महा पीठ, बांग्लादेश के सिलहट शहर से 3 किमी दक्षिण-पूर्व में, गोटाटिकर के पास, जोइनपुर गांव, दक्षिण सूरमा में, शक्ति पीठों में से एक है। यहां हिंदू देवी सती की गर्दन गिरी थी। देवी को महालक्ष्मी के रूप में पूजा जाता है और भैरव रूप सांभरानंद हैं।

सीताकुंड, चटग्राम: (देवी भबानी) देवी भवानी को समर्पित चंद्रनाथ शक्तिपीठ मंदिर बांग्लादेश के चटगांव जिले के सीताकुंडा स्टेशन के पास चंद्रनाथ पहाड़ी में स्थित 51 शक्ति पीठ मंदिर में से एक है। पहाड़ी की चोटी पर प्रसिद्ध चंद्रनाथ मंदिर इस शक्ति पीठ का भैरव मंदिर है, न कि शक्ति पीठ का। हिंदू पवित्र ग्रंथों के अनुसार, देवी सती का दाहिना हाथ गिर गया था। यहां दो मूर्तियां हैं, एक देवी सती की हैं और इसे भवानी कहा जाता है। इस मंदिर में दूसरी मूर्ति भगवान शिव की है जिन्हें चंद्रशेखर के नाम से जाना जाता है। यह विशेष शब्द उन सभी व्यक्तियों के लिए दर्शाया गया है जिनके मुकुट पर या उनके सिर के शीर्ष पर चंद्रमा है। कई स्थानीय लोगों की मान्यता के अनुसार, भगवान शिव ने स्वयं कलियुग के दौरान चंद्रशेखर पर्वत की यात्रा करने की प्रतिबद्धता जताई थी।

जयंती, सिलहट: (देवी जयंती) जयंती शक्तिपीठ मंदिर देवी जयंती को समर्पित 51 शक्तिपीठों में से एक है। देवी सती की बाईं जांघ बांग्लादेश में सिलहट जिले के जयंतिया-पुर के पास, कलाजोर, बोरभाग गांव में गिरी थी। उनकी जयंती शक्ति के रूप में पूजा की जाती है और क्रमादेश्वर भैरव के रूप में प्रकट होते हैं।

(देवी जशोरेश्वरी) जशोरेश्वरी काली मंदिर बांग्लादेश में एक प्रसिद्ध हिंदू मंदिर है, जो देवी काली को समर्पित है। यह मंदिर ईश्वरीपुर में स्थित है। जेशोरेश्वरी उस स्थान का प्रतिनिधित्व करती है जहां सती की हथेली गिरी थी। महाराजा प्रतापादित्य के सेनापति ने झाड़ियों से आने वाली प्रकाश की एक चमकदार किरण की खोज की, और एक मानव हथेली के रूप में नक्काशीदार पत्थर के टुकड़े पर आया। बाद में, प्रतापादित्य ने जशोरेश्वरी काली मंदिर का निर्माण, काली की पूजा करना शुरू कर दिया। "जेसोर की देवी" होने के नाते, इसका नाम जेसोर के नाम पर रखा गया था।भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 27 मार्च, 2021 को सतखीरा के श्यामनगर उपजिला में जेशोरेश्वरी काली मंदिर का दौरा किया। श्यामनगर के लिए किसी भी देश की सरकार के प्रमुख की यह पहली यात्र थी, हालांकि विभिन्न देशों के मंत्रियों और गणमान्य लोगों ने पहले जेशोरेश्वरी काली मंदिर का दौरा किया है।

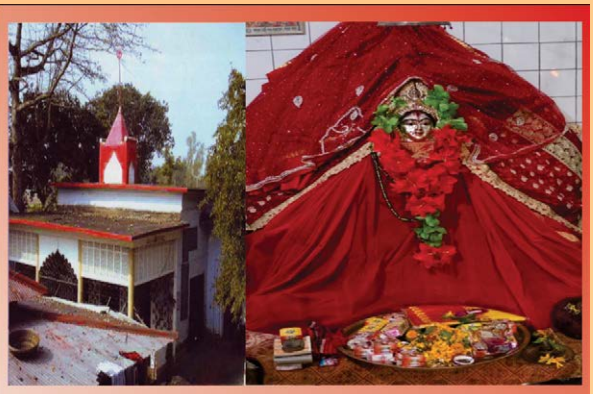

करतोय, बोगुरा: (देवी अपर्णा) यह शक्ति पीठ भवानीपुर में है। बोगरा जिले, राजशाही डिवीजन, बांग्लादेश के शेरपुर उपजिला से लगभग 28 किलोमीटर की दूरी पर स्थित कराटोया। यहां की शक्ति देवी को अपर्णा कहा जाता है और भैरव वामन है। भबनीपुर में "सती" माँ तारा के शरीर का हिस्सा गिर गया, जिसे पायल (आभूषण), बाएं सीने की पसलियों, दाहिनी आंख या बिस्तर (विभिन्न स्रोतों के अनुसार) छोड़ा जा सकता है।

## मनसा शक्ति पीठ तिब्बत में स्थित है।

यह शक्ति पीठ सबसे शुद्ध और पवित्र जल निकाय के बगल में स्थित है जिसे विशेष रूप से मानस सरोवर झील के रूप में जाना जाता है। यहाँ, देवी मनसा (देवी शक्ति का रूप) और भावान अमर (भावान शिव का रूप) मनसा शक्ति पीठ के व्यक्तिपरक हैं। हिंदू पौराणिक कथाओं में, शक्ति पीठ मनसे में सती का दाहिना हाथ गिरा था।चूंकि विभिन्न शक्ति पीठों में देवी की मूर्ति को एक अलग नाम प्रदान किया गया है, इसलिए देवी की इस विशेष मूर्ति को दिया गया नाम दक्षिणायनी (दुर्गा) के रूप में जाना जाता है।

बाबा हरभजन सिंह जो मरकर भी सीमा की रक्षा करते है।हरभजन सिंह एक भारतीय सेना के सैनिक और प्रतिष्ठित महावीर चक्र रिसीवर थे जिनकी पूर्वी सिक्किम के नाथूला दर्रे के पास मृत्यु हो गई थी। भारतीय सेना के कई सैनिकों द्वारा "नाथूला के नायक" के रूप में पूजनीय, लोगों ने बाबा हरभजन सिंह के सम्मान में एक मंदिर बनाया है।सैनिकों का मानना है कि बाबा उन्हें कम से कम तीन दिन पहले किसी भी अचानक हमले की चेतावनी देंगे। नाथूला में दोनों राष्ट्रों के बीच फ्लैग मीटिंग के दौरान, चीनियों ने हरभजन सिंह के सम्मान में एक कुर्सी रखी, जिसे तब से संत (बाबा) के रूप में जाना जाता है। हर साल 11 सितंबर को, एक जीप अपने निजी सामान के साथ निकटतम रेलवे स्टेशन, न्यू जलपाईगुड़ी के लिए रवाना होती है, जहां से इसे तब पंजाब के कपूरथला जिले में कूका गांव में ट्रेन से भेजा जाता है, जो उसका गृह नगर है।

रामो विग्रहवान् धर्मः

100 साल बाद कनाडा से लौटी मां अन्नपूर्णा की मूर्ति काशी में स्थापना की

## सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

भारतीय संविधान के मूल दस्तावेजों के आरंभिक पृष्ठों पर अंकित भगवान श्री राम का चित्र

हम्पी में एक मंदिर की दीवार पर यह नक्काशी की गई है।

गणतंत्र दिवस पर राजपथ परेड में यूपी की झांकी: राम मंदिर की प्रतिकृति और महर्षि वाल्मीकि द्वारा रामायण लेखन चित्रण।

कोडंडारामा मंदिर, गोलाला मामिदा, पूर्वी गोदावरी, आंध्र प्रदेश में अद्भुत वास्तुकला।

न्यूयॉर्क के संग्रहालय में संरक्षित हनुमान जीन्यूयॉर्क की प्रतिमा इसका निर्माण चोल राजाओं के काल में हुआ

अशोक वाटिका में माता सीता को श्री राम की मुद्रिका दिखाते रामदूत हनुमान

## सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

अशोक वाटिका में माता सीता को
श्री राम की मुद्रिका दिखाते रामदूत हनुमान

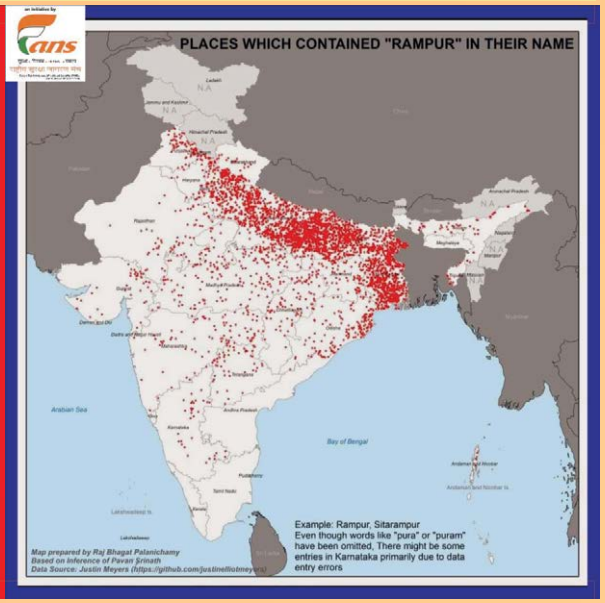


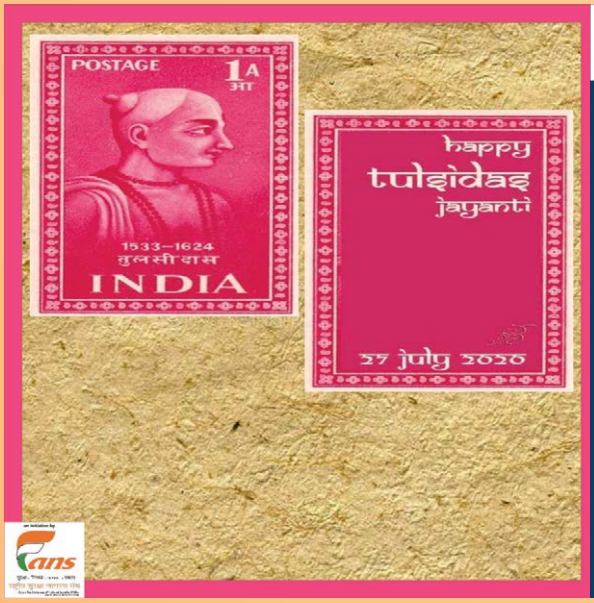

रामसेतु का अद्भुत चित्र

Indian govt proposes to make citizenship for Pakistan Hindus

**Citizens of Pakistan Rally for CAA**

# सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

सुप्रीम कोर्ट ने 18 मई, 2017 को तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित कर दिया।

AMERICAN INDIANS
CELEBRATING REMOVAL OF 370 ARTICLE

उत्तर-पूर्व जनजातियां भारतीय आदिवासी समुदाय का एक प्रमुख हिस्सा हैं। वे सभी उत्तर पूर्व के सभी राज्यों में बिखरे हुए हैं। अरुणाचल प्रदेश में लगभग 25 प्रकार की जनजातियाँ हैं। नागालैंड में लगभग 16 से अधिक प्रमुख जनजातियाँ भी हैं। प्रमुख जनजातियों के कुछ उदाहरण गारो, खासी, जयंतिया, आदि, न्याशी, अंगामी, भूटिया, कुकी, रेंगमा, बोडो और देवरी हैं।

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र देश के भौगोलिक और प्रशासनिक विभाजन दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। यहां के राज्य अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैंड, त्रिपुरा और सिक्किम हैं।यह क्षेत्र कई पड़ोसी देशों के साथ 5182 किलोमीटर (इसकी कुल भौगोलिक सीमा का लगभग 99%) की अंतरराष्ट्रीय सीमा साझा करता है- तिब्बत स्वायत क्षेत्र के साथ 1395 किलोमीटर और उत्तर में चीन, पूर्व में म्यांमार के साथ 1640 किलोमीटर, बांग्लादेश के साथ 1596 किलोमीटर। दक्षिण -पश्चिम, पश्चिम में नेपाल के साथ 97 किमी और उत्तर-पश्चिम में भूटान के साथ 455 किमी। इसका क्षेत्रफल 262,230 वर्ग किलोमीटर है, जो भारत के क्षेत्रफल का 8% है।

पूर्वोत्तर भारत अपनी विशिष्ट संस्कृति और पारंपरिक जीवन शैली के लिए जाना जाता है। यह 200 से अधिक आकर्षक जनजातियों द्वारा बसी भूमि है। पूर्वोत्तर भारत के प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी अनूठी आदिवासी संस्कृति भारत में आदिवासी दुनिया की जातीय विविधताएं हैं।

1937 में बर्मा के अलगाव और 1947 में ब्रिटिश भारत के विभाजन ने अंतरराष्ट्रीय सीमाओं के पार गारो, खासी, कॉम, मारा, कुकी, ज़ेमी , मिज़े और नागा जैसे कई आदिवासी समूहों को विभाजित किया।

खासी और गारो आबादी के भौगोलिक वितरण के मुख्य क्षेत्रों को दर्शाने वाला मेघालय का नक्शा।

| SL. No. | Name of the Scheduled Tribe | Name of the Scheduled Tribe | Proportion ST Population |
|---|---|---|---|
| 1 | All Scheduled Tribes | 3,308,570 | 100% |
| 2 | Boro | 1,352,771 | 40.9 |
| 3 | Miri | 587,310 | 17.8 |
| 4 | Mikir | 353,513 | 10.7 |
| 5 | Rabha | 277,517 | 8.4 |
| 6 | kachari | 235,881 | 7.1 |
| 7 | Lalung | 170,622 | 5.2 |
| 8 | Dimasa | 110,976 | 3.4 |
| 9 | Deori | 41,161 | 1.2 |

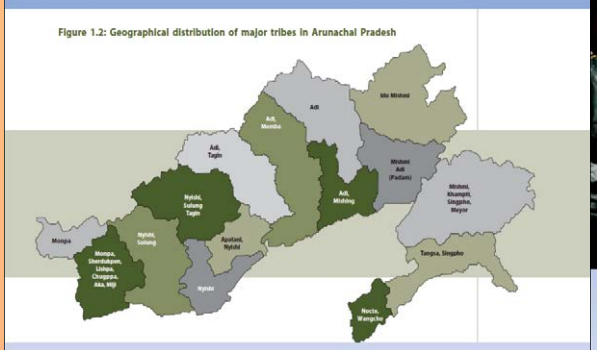


अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों को दर्शाता मानचित्र

मेघालय की खासी जनजाति दुनिया के कुछ समाजों में से एक है जो एक मातृसत्तात्मक प्रणाली का अनुसरण करती है। महिलाएं घर की मुखिया होती हैं और जो परिवार के लिए जीवनयापन करने के लिए कड़ी मेहनत करती हैं। पुरुष यहां अपने ससुराल में रहने के लिए शादी के बाद निकल जाते हैं जो देश के बाकी हिस्सों के विपरीत है। जब कोई लड़की पैदा होती है तो यहां उत्सव मनाया जाता हैं और जब कोई लड़का पैदा होता है, तो वे इसे विनम्रतापूर्वक भगवान के उपहार के रूप में स्वीकार करते हैं।

# सनातन संस्कृति के वैश्विक प्रमाण

यह यहाँ है कि दुनिया का सबसे बड़ा इलेक्ट्रिक गिटार पहनावा रहता है12 जनवरी, 2013 को एक गिनी जवर्ल्ड रिकॉर्ड बनाया गया था, जब नागालैंड में 368 प्रतिभागी गन्स एन 'रोजेज द्वारा नॉकिंग ऑन हेवेन डोर की धुनों पर संघर्ष करने के लिए इकट्ठ हुए थे। भाईचारे को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, दीमापुर के एग्री एक्सपो में स्काई ग्रुप ने इस चौंका देने वाले कृत्य को खींच लिया।

डिगबोई - एशिया में पहला स्थान तेल के लिए ड्रिल किया जाना हैअसम का एक समृद्ध छेटा शहर डिगबोई, कई अद्वितीय बंगलों के साथ बिंदीदार है, एशिया में पहला स्थान है जहां वर्ष 1901 में तेल ड्रिलिंग शुरू हुई थी। यहां एक तेल संग्रहालय है जो इंडियन ऑयल कॉर्पोरेशन द्वारा बनाए गए शहर के इतिहास को बताता है। इस जगह के बारे में एक और आकर्षक बात यह है कि जनरल स्टिलवेल के तहत ची नीऔर अमेरिकियों के साथ संयुक्त अभियान के लिए यहां तैनात यूरोपीय लोगों का द्वितीय विश्व युद्ध कब्रिस्तान मैदान है ।

मुख्यभूमि दक्षिण पूर्व एशिया, जिसे ऐतिहासिक रूप से इंडोचाइना के रूप में भी जाना जाता है, जो अखंड भारत का हिस्सा है। जिसमें पूर्वोत्तर भारत के कुछ हिस्से वियतनाम, लाओस, कंबोडिया, थाईलैंड , म्यांमार और पश्चिम मलेशिया और समुद्री दक्षिण पूर्व एशिया शामिल हैं, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से नुसंतारा के रूप में भी जाना जाता है। ईस्ट इंडीज और मलय द्वीपसमूह, भारत के अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, इंडोनेशिया, पूर्वी मलेशिया, सिंगापुर, फिलीपींस, पूर्वी तिमोर, ब्रुनेई, क्रिसमस द्वीप और कोकोस (कोकोस) शामिल हैं

संस्कृति के संदर्भ में सबसे बड़ा दर्पण प्रतिबिंब इन क्षेत्रों में मनाया जाने वाला त्योहार है, खासकर अप्रैल के महीने में। असम में बोहाग बिहू का त्योहार, लाओ पीडीआर में पाई माई, थाईलैंड में सोंगकरन और अरुणाचल प्रदेश के संगकेम ने एक नए साल की शुरुआत को चिह्नित किया और इसी तरह का महत्व रखा।

लाओ पीडीआर में पाई माई भगवान बुद्ध की पूजा के साथ नृत्य और गीतों के साथ एक दूसरे पर पानी फेंकने वाले लोगों के साथ मनाई जाती है। अरुणाचल में भी संगके एक दूसरे पर पानी फेंकने की प्रथा का अनुसरण करता है और भगवान बुद्ध की पूजा का भी पालन करता है।

अरुणाचल प्रदेश और असम में रहने वाले ताई लोगों की भाषा में थाईलैंड और लाओ पीडीआर में बोली जाने वाली भाषा से समानता है। ताई – अहोम्स या अहोम्स को म्यांमार में 'शान', थाईलैंड में 'थाई', लाओस में 'लाओ', चीन में 'दाई' और चीन में 'झुआंग' और वियतनाम में टाय – थाई' कहा जाता है। चिन कुकी मिज़ो समुदाय में भी चीनियों से समानताएं हैं. उत्तर-पूर्व भारत के कुछ नागा और मणिपुरी लोगों का भी दक्षिण-पूर्व एशिया से कुछ संबंध है और हो सकता है कि वे दक्षिण पूर्व एशिया से चले गए हों।

डांस फॉर्म के संबंध में, बालिनी नृत्य और मणिपुरी नृत्य रूपों में समान इशारे हैं और उनका सीधा संपर्क नहीं है। पोशाक के बारे में, युनान में टैस के बीच पीला रंग घूमता है, मणिपुर के मीतेई दूल्हे के समान है जिसे वे शादी के एक दिन बाद पहनते हैं। भोजन की आदतों के बीच भी समानताएं हैं क्योंकि पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों द्वारा आमतौर पर खाया जाने वाला चिपचिपा चावल जापान और चीन में पाए जाने वाले चिपचिपे भूरे चावल की तरह है।

मांस और मछली के अलावा चीन, हांगकांग, सिंगापुर, जापान और अन्य दक्षिण एशियाई देशों में भी सब्जियां आम हैं। वे सभी अद्वितीय स्वाद और किण्वित प्रकृति की सामग्री की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ समान प्रकार के स्वाद प्रदान करते हैं म्यांमार के बाजार उत्तर-पूर्व के समान हैं जहां माल पूर्वोत्तर क्षेत्र की तरह ही ढेर हो जाता है और इसी तरह के उत्पाद प्रदर्शित होते हैं। बर्मी पोशाक को वैसे ही पहना जाता है जैसे पूर्वोत्तर में है और स्ट्रीट फूड और पारंपरिक खाद्य पदार्थों में भी समानताएं हैं।

कला और नृत्य रूपों, सामाजिक संरचना, खाने की आदतों, बुनाई रूपांकनों, शिकार प्रथाओं और दक्षिण एशियाई देशों और पूर्वोत्तर भारत के बीच सांस्कृतिक प्रथाओं में कई सामान्य भौतिक विशेषताएं हैं। दोनों क्षेत्र एक आंतरिक संबंध साझा करते हैं जो सदियों से है। इन सभी तथ्यों के अलावा, थाईलैंड मे 3 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में यहां राजा अशोक द्वारा बौद्ध धर्म का प्रसार किया गया।

दक्षिण एशियाई पारंपरिक कपड़े में समानता दिखाने वाली तस्वीर

## तिब्बत का आध्यात्मिक हृदय: जोखांग मंदिर

सामान्य तौर पर, इस मंदिर को तिब्बत का सबसे पवित्र और महत्वपूर्ण मंदिर मानते हैं। मंदिर का रखरखाव वर्तमान में गेलुग स्कूल द्वारा किया जाता है , लेकिन वे बौद्ध धर्म के सभी संप्रदायों के उपासकों को स्वीकार करते हैं । मंदिर की स्थापत्य शैली भारतीय विहार डिजाइन, तिब्बती और नेपाली डिजाइन का मिश्रण है।

Sitting on Mount Gambo Utse at the western suburb of Lhasa, Drepung Monastery, built in 1416 by Jamyang Choge Tashi Palden, one of Tsongkhapa's main disciples, is the largest Tibetan monastery as well as one of the Great Three Monasteries of Lhasa, along with Sera Monastery and Ganden Monastery.

The highlights for visiting Drepung Monastery include **unique architectures and magnificent buildings**, like Ganden Palace, Coqen Hall, Four Great Dratsangs (Loseling, Gomang, Deyang, Ngagpa), and the Tibet biggest kitchen for over 10,000 monks during the heyday; **one-day Drepung Kora** to see the stunning vista of Lhasa Valley and Lalu Wetland, even Tibet landmark - Potala Palace; **Drepung Buddhist debate** to watch monks debating sutras and scriptures with exaggerated gestures and logic arguments; **Drepung Shoton Festival** to enjoy the grandest Buddha Thangka painting unfolding ceremony in Lhasa summer; **10 minutes' walk to Nechung Monastery** to explore the seat of State Oracle and the most striking murals and spectacular paintings, etc. If time allows, you can combine your Drepung day trip with Sera Monastery to observe sand mandala making and monks debates in just one go.

To be blunt, Drepung Monastery gives you a great chance to trek the enchanting kora with sincere pilgrims and experience the authentic culture and exotic customs in Shoton Festival. Please follow our in-depth guide below and make the most of Drepung Monastery tour.

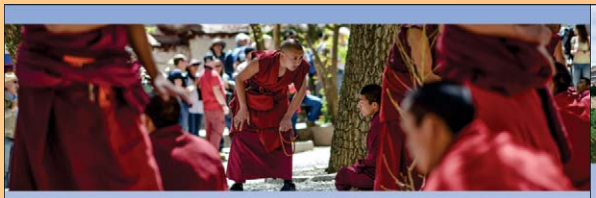

### Sera Monastery, Lhasa

Worshipped not just as one of the six main Gelugpa monasteries of Tibet Buddhism, **Sera Monastery** has assumed another responsibility of cultivating eminent monks by serving as a religious educational institution. It was originally built by Jamchen Chojey Sakya Yeshe of Zel Gungtang (1355–1435), a disciple of Je Tsongkhapa in 1419.

Hearing perpetual chanting of Buddhist scriptures by lamas echoing in the Tsochin Hall and seeing the routine activity of **Buddhist debating** in the large debating courtyard, a palpable sense of holiness floods through the whole body. Thousands of murals on the building walls make visitors coming to worship the Monastery and feel as if they were in the heaven of Buddhism, accepting the baptism of the Buddhist doctrines and powers. Sera Monastery library and printing press guide you to get an all-round comprehension about the Monastery's past and the present.

While the Sera Kora provides you another opportunity to get an in-depth understanding about the architectural structure of Sera building complex and how this monastery can be functioned like a self-contained city. Please follow our professional guide below and make the most of Sera Monastery tour.

### Ganden Monastery in Lhasa, Tibet

Towering on the Wangbori Mountain, Ganden Monastery, built by Je Tsongkhapa in 1409, is the 1st and primary monastery of the Gelug School of Tibetan Buddhism as well as one of the Great Three Holy Monasteries of Lhasa, along with Sera Monastery and Drepung Monastery.

The highlights for visiting Ganden Monastery involve **one-day Ganden Kora** to see the enchanting vista of Lhasa Valley and surrounding mountains; **five-day Ganden to Samye trek** to enjoy the most spectacular views of Lhasa and Shannan's countryside; **oberserving Ganden Monastery incense making** to know more about Tibetan handicraft and art; **Ganden Thangka Unveiling Festival** to watch the giant Buddha Thangka unfurled on the hillside; **Ganden Ngachen Chenmo Festival** to light up butter lamps to commemorate Je Tsongkhapa, etc.

To sum up, Ganden Monastery offers you an excellent opportunity to dive deep into the profound Gelugpa culture of Tibetan Buddhism and enjoy the stunning landscape of alpine mountains outside Lhasa City. Please follow our in-depth guide below and make the most of Ganden Monastery tour.

- **About Ramoche Monastery**

The sister temple to the Jokhang Temple--Ramoche Temple was constructed around the same time. It was originally built to house the Jowo Sakyamuni image brought to Tibet by Princess Wencheng but sometime in the 8th century the image was swapped for an image of Akshobhya, brought to Tibet in the 7th century as part of the dowry of King Songtsen Gampo's Nepali wife, Princess Bhrikuti. By the mid-15th century the temple had become Lhasa's Upper Tantric College.

As you enter the temple, past pilgrims doing full-body prostrations and the 1st of 2 inner koras, you'll see a protector chapel to the left, featuring masks and puppets on the ancient pillars and an encased image of the divination deity Dorje Yudronma covered in beads on a horse. The main chapel is full of fearsome protector deities in YABYUM pose, as befitting a Tantric temple.

- **About Rongbuk Monastery**
- Rongbuk Monastery, the highest monastery in the world, was established sometime in the early part of the 20th century, under the Nyingmapa Sect. Its history is sketchy. Rongbuk Valley was know as the "sanctuary of the birds". There was a strict ban on killing any animal in the area. The British arriving at Rongbuk in 1921, found the animals of the valley extraordinarily tame: wild blue sheep would come down to the monastery.

  There were hundreds of Lamas and pilgrims engaged in meditation in a cluster of brightly colored buildings. The British did not meet the Head Lama as he was off doing a year's meditation in a cave. It was common for hermits to go on meditation retreats in caves in the valley, subsisting on water and barley passed to them once a day.

- The monastery was razed in the 1960s. In the late 1980s and early 1990s, rebuilding took place at Rongbuk Monastery and its monastery has been resurrected, along with the stupa that figures prominently in tourist photography of the scene. In Rongbuk Monastery, some of the murals are superb. The monastery and its large chorten make a great photograph with Mount Everest thrusting its head skyward in the background.

- **Tips of Rongbuk Monastery**
- 1. Rongbuk Monastery is connected to Shigatse City and Lhasa by a road, so it is easy to get to those two beautiful cities from this location.
- 2. Visitors who decide to climb the Mt. Everest can also stay here at night. Each room can accommodate 4 – 5 people, but you cannot expect too much from its condition. It is about 8 km to the Everest Base Camp.
- 3. There is also a small restaurant opened by a Tibetan, the prices there are a bit high. You can take some food in advance.

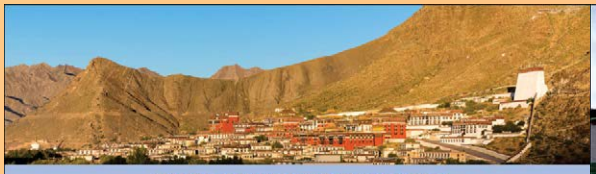

### Tashilhunpo Monastery in Shigatse, Tibet

Sitting on the southern slope of Nyiseri Mountain in the west of Shigatse City, Tashilhunpo Monastery, built in 1447 by Gedun Drupa, the first Dalai Lama, is the largest monastery in Tsang Area as well as the traditional seat of successive Panchen Lamas, Tibet's second highest incarnation. Meanwhile, it is also one of the Great Six Gelugpa Monasteries of Tibetan Buddhism (another five are Drepung Monastery, Sera Monastery, Ganden Monastery, Kumbum Monastery, and Labrang Monastery).

The highlights for visiting Tashilhunpo Monastery involve **exploring unique architectures and historic sites**, like Coqen Hall, Chapel of Jampa, 4 Great Dratsangs, 56 Sutra Halls and 64 Kamcuns, etc.; **walking the scenic kora around Tashilhunpo** with sincere pilgrims to enjoy the stunning vista of the monastery itself and Shigatse City, even Shigatse Dzong (Samdruptse Dzong or small Potala Palace) in far distance; **visiting ancient tombs of the fourth and tenth Panchen Lama** and the dazzling chortens, which hold the bones and remains of the sacred lamas of Tibet; **observing Tashilhunpo Buddhist debate and scripture chanting** to get a hint of Tibetan Buddhism and local monk lifestyle. If possible, you can time your trip with **3-day Tashilhunpo Monastery festival** to appreciate the three Giant Thangka Buddha (Amitabha Buddha, Sakyamuni Buddha, Maitreya Buddha) exhibited on the platform.

In a word, here you can explore Tibetan Buddhism, appreciate religious art, and participate in the interesting festivities in just one go. Please follow our in-depth guide below and make the most of Tashilhunpo Monastery tour.

- **About Pelkor Chode Monastery**
- Pelkor Chode Monastery means "Auspicious Wheel Joy Monastery" in Tibetan language. It lies at the foot of the Dzong Hill to the west of Gyangze Town. Encircled by mountains on 3 sides, the monastery is composed of 4 major parts: Buddhist halls, tower, Zhacang and surrounding wall. It is an important cultural relic protection unit on the level of the Tibet.

- The grand Sutra Hall was built in the Ming Dynasty jointly initiated and supervised by the 1st Panchen Gelegs Phabzang and the Prince of Dharma Rabdain. It was completed and consecrated in 1425. Besides the main hall, there are the Dharma Hall, Arhat Hall and many other constructions. At the left side of the main hall enshrines an 8-meter tall glided bronze sculpture of Maitreya. The silk Thangka, 16 arhats' sculpture, 3-dimensional Mandala and various sculptures all have a long history and unique style.

  The monastery treasures 1,049 sets of ancient Tibetan sutras which are most valuable for studying Tibetan religion and ethnic cultures. The monastery has 17 Zhacangs that belong to the Sakya (the major monastery is Sakya Monastery), Gagyu and Gelug (the major monastery is Ganden Monastery) sects of Tibetan Buddhism. It is really rare among the Tibetan monasteries that several sects could coexist under one roof.

- The main tower of the monastery was completed in 1436 with the name of One-Hundred-Thousand-Buddha Tower. It is 42.4 meters high and consists of 14 storeys from the tower base to the top banner. Taking up 2,200 square meters, the octagonal tower shrinks in size from the base to the top. With 108 doors and 76 niches, each of which hosts a dominant religious figure and mural, the tower is said to enshrine more than 100,000 Buddha statues.

- **About Sakya Monastery**
- Sakya Monastery is the center of the Sakya Sect. In Tibetan, the word Sagya means "gray soil" referring to the weathered gray earth on the Bonbori Hill where the monastery is located. This name later referred to the place then to the Sagya Sect of Tibetan Buddhism. The monastery is 148 km away from Shigatse.
- The monastery is divided into 2 by the Zhongqu River. While the Northern Monastery sits along the Bonbori Hill, the Southern Monastery lies in the valley. The Northern Monastery was founded in 1073 by Kun Gongjor Gyibo, founder of the Sakya Sect. The Northern Monastery was grand in scale and had many constructions. Unfortunately, only a 2-storey hall built in the Yuan Dynasty can still be found today as the rest of the buildings were long destroyed and left in decay.

  The Southern Monastery was built in 1288 by Drogon Chogyal Pagba, 5th Sakya Throne Holder. Pagba was an important political activist, grand Lama and scholar in the Yuan Dynasty. While he was young, Pagba followed his uncle Sapan Gunggar Gyaincain to journey to Liangzhou (in Gansu Province). There they talked with Godan, a grandson of Genghis Khan. They were able to facilitate Tibet's submission of authority to the Yuan Dynasty. For many years, Pagba followed Kublai Khan who became the great Khan in 1260 and honored Pagba as the State Tutor. Kublai Khan granted Pagba a jade seal and the authority over the Buddhist affairs in the empire as well as the administration over Tibetan regions.
- Sakya Monastery is often referred to as the 2nd Dunhuang as it boasts of many classical books whose exact number no one can tell. At the rear and both flanks of the Sutra Hall, giant wooden shelves reach up to the ceiling. Most of the classics date back to the Yuan and Ming dynasties. The hand-written classics were carefully written with golden, silver and crimson powder. They are bound in scrolls, folders or between boards. One of the scriptures bound in boards weighs a good 500 kilogrammes, making it the world's hugest scripture. Besides religious content, the classics describe the history, medicine, philosophy, calendric system, geology, opera, poetry, folklore and grammar concerning Tibet.
- The Sakya Monastery holds the world's largest treasure of Buddhist scriptures written on pattra leaves. There are 20 volumes of such scriptures written in Tibetan, Mongolian and Sanskrit. With iron pens, ancient scholars carefully wrote scriptures on pattra leaves about 5 cm broad, some 20-60 cm long. As the Sakya Monastery is located in a cold and high place, the dry climate protects the treasures from rotting. Thus the treasures can be preserved until day.

**About Drigung Til Monastery**

Close to Tidrum Nunnery is Drigung Til Monastery, a monastery impossibly grafted onto a sheer cliff face. Drigung was originally the base of the Drigung sub-order of the Kagyu sect, dating from the 12th century. At one time it housed over 500 monks. Going up switchbacks in a Landcruiser, you may pass a donkey bearing a body under a blanket: Drigung Til Monastery is reputed to have the best sky burial ceremony of all. It is said that bodies dispatched here will not fall down into the "3 bad regions".

The monastery is intriguing due to its location: it offers stupendous views over the entire valley-- you can clamber up to the gold-capped roofs for better vistas. You can visit Drigung and move on, or you can stay the night at the monastery guesthouse, which has 2 12-bed dorms. Although the dorms are basic, the atmosphere is special, as you are staying inside the monastic grounds. Monks supply hot water in Thermoses, and there's a small shop selling packaged noodles, candles and drinks. Some group tours camp out in the valley below.

Previously, a large sign was posted near the monastery entrance saying that visitors are not permitted to witness sky burials at Drigung. Obviously, photographers sneaking shots with long lenses have upset the monks to the point where they have banished visitors from the sky burial site altogether. Wether this situation will change remains to be seen-- ask your guide or driver. The sky burial site is located about 600 meters from the gompa-- a trial to get there starts just below the monastery and then turns uphill. The site is a large fenced-off area surrounded by prayer-flags.

Anyway, this scene is not for the faint or heart-- it's a grisly ritual where bodies are chopped into pieces and fed to the vultures.

- **About Drak Yerpa**
- For those with an interest in Tibetan Buddhism, Dra Yerpa hermitage, about 16km northeast of Lhasa, is one of the holiest cave retreat. Among the many ascetics who have sojourned here are Guru Rinpoche and Atisha, the Bengali Buddhist who spent 12 years proselytizing in Tibet. King Songtsen Gampo also meditated in a cave, after his Tibetan wife established the first of Yerpa's chapels. The peaceful site offers lovely views and is a great day trip from Lhasa.
- At one time the hill at the base of the cave-dotted cliffs was home to Yerpa Drubde Monastery, the summer residence of Lhasa's Gyuto College at the Ramoche Monastery. The monastery was destroyed in 1959. Monks have begun to return to Yerpa but numbers are strictly controlled by the government, which carries out regular patriotic study sessions.
- From the car park, take the left branch of the stairway to visit the caves in clockwise fashion. The 1st caves are the Rigsum Gompo Cave and the Temjl Drubpuk, the cace where Stisha meditated. Look for the stone footprints of Yeshe Tsogyel in the former and the 5th Dalai Lama in the latter. At one nearby cave pilgrims squeeze through a hole in the rock wall; at another they take a sip of holy water.
- The yellow Jamkhang has an impressive 2-storey statue of Jampa flanked by Chana Dorje to the left and Namse and Tamdrin to the right. Other statues are of Atisha flanked by the 5th Dalai Lama and Tsongkhapa. The upper cave is the Drubthubpuk, recognizable by its black yak-hair curtain. Continuing east along the ridge a detour leads up to a chorten that offers fine views of the valley.
- Climb to the Chogyal-puk, the Cave of Songtsen Gampo. The interior chapel has a central thousand-armed Chenresig statue known as Chaktong Chentong. Pilgrims circle the central rock pillar continually. A small cave and statue of Songtsen Gampo are in the righthand corner.

My Son Ruins, Vietnam

Today, you can see the spectacular Angkor ruins not just in Siem Reap, but also in Laos and Thailand in Champasak and Ayutthaya respectively. This is a testament to how Indian religion, astrology, architecture and engineering was channelled through the Angkor Empire.

Quite ironically, however, was that just like the Indus Valley civilisation, the Angkor Empire eventually collapsed with the complex irrigation and waterway canals it engineered. This knowledge of irrigation it had picked up from India, who kept the knowledge passed down from the Indus Valley civilisation.

Wat Phou, Luang Prabang, Laos

But despite this, Angkor Wat in Siem Reap is still the largest Hindu temple in the world, and was built and refurbished by both a long line of Hindu and Buddhist rulers which left their mark on it in various ways, the best being a huge 800-metre bas relief carving depicting the Indian Epic the Ramayana, an infamous Hindu tale of victory over evil.

श्री राम द्वारा बाली की वध
दिखाते हुए लाओस की डाक टिकट। (2004)

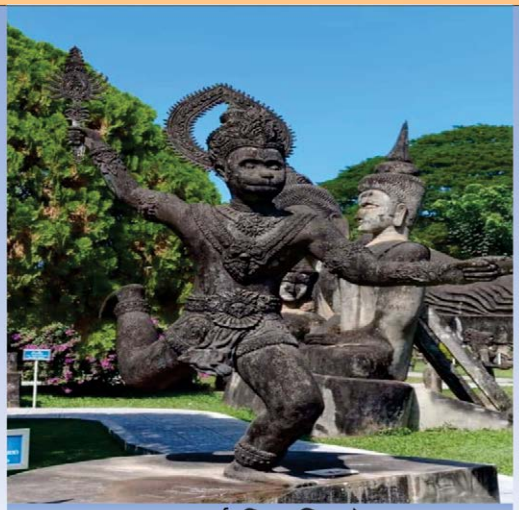

बुद्ध पार्क वियनतियाने ,
लाओस में हनुमान जी की प्रतिमा

वसंत पंचमी महोत्सव पर लाओस द्वारा प्रकाशित माँ सरस्वती को समर्पित एक डाक टिकट है । (1974)

1995 में, रामायण के पात्रों पर डाक टिकटों का सेट लाओस द्वारा जारी किया गया था।

विदेशी धरती लाओस में एक और कुरुक्षेत्र के प्रमाण मिले हैं। इस तीर्थ की महत्ता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि पांचवीं शताब्दी में लाओस के राजा देवानिक ने लाओस की धरती पर कुरुक्षेत्र महातीर्थ का निर्माण किया था। लाओस में प्राचीन मंदिर, सरोवर और घाट मिले हैं। वहां से मिले दुर्लभ शिलालेख से इस बात के प्रमाण मिले हैं कि राजा देवानिक ने कुरुक्षेत्र की पवित्र धरा पर बने तीर्थों के महत्व को देखते हुए ही नया कुरुक्षेत्र बनाया है। यहां पर बाकायदा कुरुक्षेत्र के ब्रह्मसरोवर की तर्ज पर एक सरोवर भी बनाया गया है, जो दो भागों में बंटा हुआ है

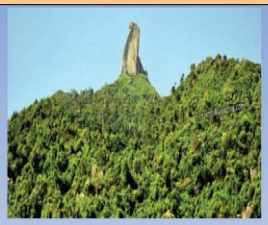

**Lingaparvata (Linga hill) in Laos**

Long before King Divanika erected his stele in 456CE proclaiming Kuruksetra to be a holy place (tirtha) tribal people had gathered in the shadows of Lingaparvata looking in awe upon its lofty pinnacle reaching into the sky. But before Lingaparvata ever became known as Linga Mountain in praise of Lord Shiva this natural outcropping reaching 4645 feet into the sky was held in the minds of all indigenous people of the area as a great earth spirit where fire rituals and human sacrifices were a common practice.

Likewise in ancient India the greatest stories of mountains and gods were repeated orally for countless millennia until finally they were put in verse and the Book of Manu, Upanishads, Puranas, Rig Veda, Mahabharata, Ramayana and many more were all recorded for posterity. Today when we read these stories they seem like impossible accounts of how the gods of long ago traveled freely between earth's mountain tops and the heavens. And in a wholly desacralized cosmos where societies and nations have become predominantly secularized in their approach to existence, these ancient stories of gods and mountains are looked upon as fanciful myths without having any relationship to events taking place in the 21st century.

the gods of olden times have passed down to our civilizations of today their myths and legends by which to base our moral judgments and heroic deeds upon. If council and an audience with the gods were to be had it most likely would have taken place on a mountain top. These mountain abodes of the gods are well known and today they still hold special significance for cultures all around the world. In India and Tibet there are two mountains that are so revered for their acting as the home to Lord Shiva that sacred ceremonies are still conducted in their presence. One of the most sacred mountains in the world is Mt Kailash in Tibet and in southern India it is the sacred hill of Arunachela. Arunachela is regarded as a manifestation of Shiva himself and Mt Kailash is Shiva's actual abode.

In Laos, Lingaparvata became a focal point for austerities to Shiva in the fifth century under the vocable of Bhadresvara, the god of the Chams at My Hon-Son on the Champa (Vietnam) coast. The city of Kuruksetra and then later called Sreshthapura was the holiest ancient city for kings to make pilgrimage (tirtha yatra). In fact a 250 mile royal road runs from Angkor Wat directly to Vat Phu indicating there was a direct link to Vat Phu from the new Ankorean center.

From a distance Lingaparvata appears as a linga or even a small temple set on the summit where rituals to the gods would be performed. There is a Chinese document from the Sui dynasty (589-616CE) that mentions a temple on the summit of a mountain named Ling-kia-po-p'o, which is guarded by a thousand soldiers and consecrated to a spirit named Po-to-li. It was Georges Coedes, the famous French epigraphists, who transliterated Ling-po-p'o into Lingaparvata.

This was Shiva's pillar of fire that endlessly went into the heavens and endlessly passed down through the earth. Here was the penultimate axis of the world and once the Brahmins from India saw this outcropping they could do none other than name this mountain Lingaparvata. This one linga would be impossible to move, and would provide the devotee with a substantive feeling of awe simply by recognizing the latent power of this mountain made it possible to communicate with the gods. It was on this mountain that the priests had developed the Cakravartin cosmology that in 400 years would establish the consecration of the Khmer Empire where Shiva, Vishnu, and Brahma would be the gods that would establish divine kingship for another 500 years.

# काव्यांगन



डॉ. हिमांगी त्रिपाठी
प्रयागराज, उ.प्र.

## शब्दों से संघर्ष....

दिन भर किताबों में
अपने को झोंक देना
आधी रात को धीमी
रोशनी में भी नींद को
आँखों में रोक लेना
और डूब जाना
पूरी तरह किताबों की दुनिया में
और बता देना सबको कि
अफसर बनना आसान नहीं होता
शब्दों से संघर्ष....

घर में होकर भी सबसे दूर
एक अलग ही कमरे में
खुद को सीमित कर लेना
और अपने भविष्य को
संवारने का
जब लक्ष्य हो भरपूर
ऐसा कि बिस्तर पर
रखी चाय भी हो जाए
इन्तज़ार में ठण्डी
और गटक जाना उसको यूँही
ये साबित करता है
कि अफसर बनना आसान नहीं होता
शब्दों से संघर्ष....

बाहरी दुनिया से
खुद को भीतर समेट लेना
रात-दिन एक ही जुनून
को पूरा करने की
भरसक कोशिशों के बावजूद
डटे रहना अपने लक्ष्य पर
और चमचमाते तारे की भाँति
चमकने की चाह से ही
सिहर जाना
और फिर जूझना रात-दिन
किताबों से ये बताता है
कि अफसर बनना आसान नहीं होता
शब्दों से संघर्ष....

अपनी ज़िम्मेदारियों का भी
रखते हुए पूरी तरह ख्याल
घर के काम-काज में भी
बंटाना सबका हाथ
और हाट से ढो-ढोकर
लाना सामान
नहीं घसीटता कदम तुम्हारे
क्योंकि जुनून था
कुछ कर दिखाने का
और सबको ये बताने का भी
कि अफसर बनना आसान नहीं होता
शब्दों से संघर्ष....

एक महिला होने के बावजूद भी
तरह-तरह के उलाहनों से
होकर गुज़र जाना
तुम्हारे अटूट विश्वास को
तब और बढाता है
जब देश में हर अख़बार
और हर ख़बर पर
छा जाता है नाम तुम्हारा
और साबित कर देता है यह
कि वास्तव में
एक महिला का
अफसर बन जाना आसान नहीं होता
शब्दों से संघर्ष....



श्वेता मिश्रा
प्रयागराज, उ.प्र.

## घर की औरतें

सूरज से पहले जागती हैं
घर की औरतें
भोर आने से पहले आ जाती है
द्वार पर उनके चूडी.पायल की
आहटें
घर के भीतर से
किरणें आने से पहले अपने दफ्तर
में
उनके सुलगते चूल्हे के धुएँ में
नहाकर स्वच्छ होती हैं
रसोई की ड्यौढ़ी पर
अधसुखी पुती हुई मिट्टी
आकर्षित करती है देर तक
अपने सोंधेपन से
जैसे सूरज झलकना शुरू होता है
तेज होती जाती है
चूड़ीयों की खनखनाहट
जल्दी जल्दी करने पर
चूल्हे के ऊपर कुछ जोड़ घटाना
गुणा भाग
जो बस कर सकती है
घर की औरतें
समझ सकती हैं
अदहन के बुलबुलों की भाषा
जो किसी भी भाषाविद ज्ञानी के
समझ से परे है
और इस तरह सूरज के पूर्ण रूप में
आने से पहले
रचा जाता है हर रोज
रसोई-साहित्य घर की औरतों के
द्वारा
जिसके लिए नहीं मिला
कभी कोई मेडल कोई सम्मान उसे
या कोई मेडल बना ही नहीं
जो कर सके
इस कार्य क्षेत्र का अवलोकन।



आस्था जैन
नई दिल्ली

## खेल

कोई कभी हालातों से खेल गया,
कोई कभी ज़ज्बातों से खेल गया,
जब जिसको जितना मौक़ा लगा,
जाने-अनजाने बातों से खेल गया।

सदा चले  सच का दामन थामे,
कोई झूठे नकाबों से खेल गया।

खुद खर्च हो ताउम्र निभाए रिश्ते,
कोई पलों के हिसाबों से खेल गया।
जिन ख्वाबों को पंख दिए थे कभी,
कोई उन्हीं हसीं ख्वाबों से खेल गया।

समर्पण की बूँदों से बनाया जो दरिया,
कोई दरिया के सैलाबों से खेल गया।।

## नारी

राहों के कंकड़-पत्थर चुन,
आगे बढ़ते ही जाना तुम,
दुर्गा बनकर दुश्मन का सर,
कदमों में काट गिराना तुम।

पर्वत राज हिमालय की,
शैलपुत्री कहलाना तुम,
कमल-त्रिशूल ले हाथों में,
सती रूप अपनाना तुम।

ब्रह्मचारिणी या चन्द्रघंटा की,
शक्ति से भर जाना तुम,
कूष्माण्डा या स्कंदमाता से,
भावों का दर्श करना तुम।

कात्यायनी सम सृष्टि पर,
अपनी पहचान बनाना तुम,
कालरात्रि बन इस जग में,
सदा प्रकाश फैलाना तुम।।

# हे रश्मिरथी के निर्माता!

गणेश शर्मा 'विद्यार्थी'

हे रश्मिरथी के निर्माता!
अब पुनः धरा पर आओ तुम।
समर शेष है वाणिपुत्र,
इसको पूरा कर जाओ तुम।

कुरुक्षेत्र की समरभूमि में,
फिर हुंकार भरो अब तुम।
फिर से वैतालिक-गान सुना,
रग-रग-उत्साह भरो अब तुम।

जिह्वा को मेरी सौम्य नहीं,
प्रलयंकारी जगज्वाल बना।
जिसके भय से काँपे दुर्जन,
वाणी को सघन-कराल बना।

हे परिवर्तन के अग्रदूत!
हे नवयुग के चिर-सूत्रधार!
कविता के पीछे सत्ता हो,
भर वाणी में गर्जन-हुँकार।

जो क्रांतिगान कर सत्ता को,
कर्तव्य बताने योग्य नहीं।
वो कुछ भी कहला सकता है,
पर कवि कहलाने योग्य नहीं।

*कर्ण के वध के पश्चात जैसे ही अर्जुन को पता चलता है कि कर्ण भी कुंतीपुत्र ही था, पांडवों का ज्येष्ठ भ्राता था। अर्जुन अश्रुपूरित नेत्रों से हृदय में अत्यंत क्षोभ लेकर रणभूमि में पहुँचता है और विह्वल होकर बहुत रुदन और चीत्कार करता है -*

ज्ञात हुआ अर्जुन को ज्यौं ही, शत्रु न था दानी राधेय।
बन्धु सहोदर ज्येष्ठ भ्रात था, महावीर वो भी कौन्तेय।

तत्क्षण मध्यरात्रि में पहुँचा,
कुरुक्षेत्र हो व्याकुल पार्थ।
अश्रु भरे नैनों से चीखा,
हा भाई!! मेरे पुरुषार्थ।

करुणा का चीत्कार उठा,
कर रहा धनञ्जय विकट विलाप।
'विधि बतला तू ही, कैसे
मिटते भ्राता द्रोही के पाप?
अथवा हे भाई! तुम ही
उद्घाटित करते ये गूढ़ राज।
गुडाकेश गांडीव त्याग कर,
चरणों में सिर रखता आज।'
'पाँचों भाई शस्त्र छोड़ते,
महासमर हो जाता शान्त।
अनुचर होते दानवीर के,
या जाते कानन एकांत।

चँवर डुलाते धर्मराज भी,
नहीं माँगते कोई गाँव।
सहदेव नकुल सेवक होते,
पदत्राण भीम पहनाता पाँव।'

'मैंने मारा तुमको छल से,
वश वासुदेव भ्रम वचन कूप।
घृत महायज्ञ की लपटों में,
अर्पित करते थे विश्वरूप।'

'माँगे तुमसे देवेश भीख।
कह रहा पार्थ ये चीख-चीख।
रक्षा करने निज पुत्र-प्राण।
माँगे थे कुण्डल-कवच दान।'

'क्यों सुरपति मेरे हुए नाथ?
इससे अच्छा होता अनाथ।
आदित्य हार कर जीत गए।
सचिपति के यश-घट रीत गये।'

'अक्षय अखण्ड रवि-कीर्तिगान।
कर रहे लोक तीनों बखान।
क्यों मिले मुझे तुम भीरु तात?
क्यों मिलीं मुझे तुम भीरु मात?'

'मुझको ही मर जाने देते।
गति परम रम्य पाने देते।
क्यों माँगे कवच और कुण्डल?
होने देते रण, नीति-कुशल।'

'पर अगर कहीं वैसा होता।
फिर कहाँ युद्ध ऐसा होता।
सम्मुख होते अर्जुन शत-शत।
लड़ते रहते दिन-रात निरत।'

'अर्जुन पर पार न पा सकता।
जग-रश्मिरथी न भुला सकता।
चट्टान कौन पिघला सकता?
सागर को कौन सुखा सकता?

को रवि का तेज मिटा सकता?
खग लौह-दंड कब खा सकता?
पावक को कौन जला सकता?
खुद जल को कौन भिगा सकता?

जो लहर-लहर-लहराए उस,
मारुत को कौन बहा सकता?
गुरु परशुराम के शिष्य महा-
दानी को कौन हरा सकता?'

'पलड़ा भारी जो भी होता।
हे भाई! तेरा ही होता।
तुम जिस रहस्य से संचित थे।
हम सब उससे ही वंचित थे।'

'कर रहे दया तुम बार-बार।
हम करते थे तीखे प्रहार।
तुम बाण चलाते अति अखर्व।
पर, अघोर-कुण्ठित-अगर्व।'

'कतिपय हमको निःशस्त्र किया।
कतिपय जीवन का दान दिया।
भीम-युधिष्ठिर-माद्रिसुतों को,
अग्रज होने का भान दिया।'

'तुम-सा कोई भी दानवीर,
कब हुआ? न होने पायेगा।
युग-युग तक तेरा यश वैभव,
ये समय जगत में गायेगा।

अपना सर्वस्व निछावर ही,
तुम याचक पर कर देते थे।
अपनी झोली खाली करके,
उसकी झोली भर देते थे।'

'धन-धाम-अश्व को देने में,
मुख मोड़ा नहीं कभी अपना।
अतिशय तो ये था दुर्योधन को,
दान किया मन भी अपना।'

संस्कृति पर्व

Sanskriti Parva

(भारत संस्कृति न्यास का प्रकल्प)

# सदस्यता फॉर्म - SUBSCRIPTION FORM

नाम
NAME ______________________

पिता/पति
FATHER/HUSBAND ______________________

पत्रिका के लिए स्थाई डाक का पता
PERMANENT POSTAL ADDRESS FOR MAGAZINE ______________________

______________________

______________________

पिन कोड
PIN CODE ______________________

कन्ट्री कोड
COUNTRY CODE ______________________

ई-मेल
MAIL ID ______________________

मोबाइल नं०
MOBILE NO. ______________________

## सदस्यता का प्रकार एवं शुल्क / TYPES OF MEMBERSHIP & FEE

| | भारत में /IN INDIA | अप्रवासियों के लिए/FOR NRIs |
|---|---|---|
| वार्षिक/ANNUAL | 1000/- | $100 |
| त्रैवार्षिक/THREE YEARS | 2500/- | $250 |
| पंच वार्षिक/FIVE YEARS | 5000/- | $400 |
| आजीवन व्यक्ति/LIFETIME PERSON | 11000/- | $750 |
| आजीवन संस्था/LIFETIME INSTITUTION | 21000/- | $1000 |

शुल्क का भुगतान नगद, ड्राफ्ट या चेक से किया जा सकता है। ऑनलाइन भुगतान पत्रिका के खाते में किया जा सकता है। चेक या ड्राफ्ट 'संस्कृतिपर्व प्रकाशन' के नाम होना चाहिए।

**Account Detail**

NAME : SANSKRITIPARVA PRAKASHAN,
BANK : HDFC, PRANAY TOWERS, LUCKNOW.
A/c NO. : 50200035311373 , IFSC : HDFC0000594, MICR : 226240002, BRANCH CODE: 000594

पंजीकृत कार्यालय : बी-64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड, गोरखपुर-273001
लखनऊ कार्यालय : 2/43, विजय खण्ड, गोमती नगर, लखनऊ-226010
दिल्ली कार्यालय : बी-38 डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली-110024
सम्पर्क : + 91 94508 87186-87
यू.एस कार्यालयः 17413 Blackhawk St. Granada Hills, CA 91344 USA, Cell: 1-818-815-9826

संपर्क:- 9450887186, 9450887187, 7007172707, 9807636072
email- editor.sanskritiparva@gmail.com

# भारत संस्कृति न्यास

## उद्देश्य

- सनातन संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन और प्रसार के लिए सतत प्रयत्नशील
- राष्ट्रीय संस्कृति विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए प्रयासरत
- प्राथमिक से स्नातक तक पाठ्यक्रम में संस्कृति शिक्षा को अनिवार्य रूप से शामिल कराने का प्रयास
- राष्ट्रीय संस्कृति आयोग का गठन एवं राष्ट्रीय संस्कृति दिवस के निर्धारण के लिए प्रयास


**पत्र व्यवहार**

बी–64, आवास विकास कालोनी, सूरजकुंड गोरखपुर–273001

1–454 वास्तुखण्ड, गोमती नगर लखनऊ–226010

✆ +91:–9450887186, +91:–9450887187

**Follow us**

**पंजीकृत कार्यालय**

बी–38, डिफेन्स कॉलोनी, नई दिल्ली–110024

Contact : 011-24337573

bharatsanskritinyas@gmail.com

Website - www.bharatsanskritinyas.org